International Journal of Management, Administration, Leadership & Education

A Bi-Annual Refereed Journal

ACADEMIC AVENUE
(Publisher & Distributors)

निर्मल वर्मा की कहानियों में आधुनिक बोध

डॉ. शंकर कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी)
महाराजा अग्रसेन कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

निर्मल वर्मा कहानी को एक चाइलेंज के रूप में लेते हैं। हिन्दी साहित्य में 'कहानी' का वो स्तर कभी नहीं रहा जो निर्मल वर्मा की कहानियों में हमें दिखता है। इसकी वजह है कि निर्मल के पहले कहानी एक बंद विधा थी, अपने ही आत्म-केन्द्रित दायरों में सुरक्षित थी। कहानी अपने अनवरत प्रवाह में निर्मल वर्मा के समय में आकर अपना मुँह चौड़ा करती है और अपने में साहित्य की कई अन्य विधाओं को भी आत्मसात् करते हुए चलती है। आधुनिक काल में पत्रकारिता का प्रवेश साहित्य में होता है, आँखों-देखी रिपोर्ताज कहानी की विधा में स्फूर्त होती है। पुरानी कहानी से आधुनिक कहानी का भेद बदलाते हुए निर्मल कहते हैं – ''हम जिस विधा को आधुनिक कहानी के रूप में जानते हैं वही पुरानी कथाओं से केवल इसलिए भिन्न नहीं है कि वह अब मुद्रित होती है, सुनी नहीं जाती, किंतु एक दूसरे बुनियादी अर्थ में भी वह उनसे अलग है: आधुनिक युग तक आते-आते कहानी अपनी सामूहिक स्मृतियों के परिवार से बाहर निकलकर धीरे-धीरे एक व्यक्ति की निजी और प्राइवेट कल्पना को उद्घाटित करने लगी। अब उसकी जड़ें एक लेखक की निजी चेतना में रहती है और इस वैयक्तिक चेतना के हस्ताक्षर कहानी पर अंकित रहते हैं।''[1]

निर्मल वर्मा कहानी के उस मोड़ पर आकर खड़े होते हैं जहाँ समाज, राजनीति, व्यक्ति, परिवार, संबंध सभी.कुछ अपने अनिवार्य की स्थिति में था। नया समाज बन रहा था, जिसमें

UGC Approved Journal No – 40957
(IIJIF) Impact Factor- 4.172
Regd. No. : 1687-2006-2007 ISSN 0974 - 7648

J I G Y A S A

AN INTERDISCIPLINARY PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

Chief Editor : *Indukant Dixit*

Executive Editor : *Shashi Bhushan Poddar*

Editor
Reeta Yadav

Volume 12 April 2019 No. IV

Published by
PODDAR FOUNDATION
Taranagar Colony
Chhittupur, BHU, Varanasi
www.jigyasabhu.blogspot.com
www.jigyasabhu.com
E-mail : jigyasabhu@gmail.com
Mob. 9415390515, 0542 2366370

निर्मल वर्मा की कहानियों में अकेलापन

*डॉ. शंकर कुमार**

निर्मल वर्मा एक ऐसे कहानीकार हैं जो अपना परिवेश रचते हुए कभी भी तार्किकता और बौद्धिकता का साथ नहीं छोड़ते। कहानी इनके यहाँ समस्याओं के बीच जन्म लेती है। अधिकांश कहानियों के केन्द्र में हमें प्रतिक्षण अकेले हो रहे मनुष्य की अवधारणा मिलती है। अकेला मनुष्य केवल यूं ही नहीं इनके कहानियों में अपनी उपस्थिति दर्ज करता चलता है बल्कि लेखक इसकी बारीकियों को अपने निबंधों में बतलाते हैं। यहाँ तक हम जानते हैं कि लेखक अपने जीवन एक बड़ा हिस्सा विदेशों में गुजारे हैं। विदेशी जीवन की क्षणभंगुरताएं उन्हें आकर्षित करती जरूर है पर बहुत कम समय के लिए, इसी तरह मार्क्सवाद से भी उनकी जल्दी ही मोहभंग हो जाता है। राजनीतिक रूप से भी वे विदेशी स्थितियों के कायक नहीं है। वस्तुतः निर्मल वर्मा भारतीय परंपरा के जबर्दस्त हिमायती है। विदेशों में रहकर उनकी भारतीयता की जड़ें मजबूत हुई हैं। जिन वस्तुओं की ओर उनकी निगाहें पहले भारत में नहीं जाती थी उन्हीं वस्तुओं की ओर उनकी निगाहें विदेशी प्रभाव के बाद जाने लगी। उन्होंने भारतीय स्थितियों में 'अकेलापन' को उठाया है। इस अकेले पड़ते मनुष्य के कारणों में विश्वयुद्ध, औद्योगिक क्रांति, जागरणकाल आदि तो है ही निर्मल इसके अन्य कारणों को भी उठाते हैं।

सबसे पहली बात उन्हें मनुष्य होना ही तनाव का कारण होना दिखता है। वे कहते हैं - "मनुष्य का आत्मबोध - अपने होने की सजगता मानव-स्वभाव का कोई शाश्वत गुण नहीं है, वह एक प्रक्रिया है जो इतिहास में घटती है - एक दुर्घटना और वरदान दोनों ही। इस प्रक्रिया में आशा और अपशगुन दोनों ही निहित है - स्वतंत्रता की आशा और अकेलेपन का अपशगुन।" इसके कारणों में उनका कहना है धर्म-चेतना के धुंधले हाशिये पर लुप्त संकीर्ण, अहंग्रस्त दायरे में सिकुड़ गई जहाँ अंधेरे के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। धर्म का लुप्त होना मानवीय अकेलेपन को रहस्यात्मक बनाती है। मध्यकालीन भाव-बोध में धर्म मनुष्यों का अन्तिम आधार था। विदेशी आक्रमण और विदेशी राजाओं के राज में भी मनुष्यों के आत्मा का हनन नहीं हुआ था। परंपरा से अर्जित मिथकों के साथ तत्कालीन मनुष्य अपना जीवन निर्वाह कर लिए थे। पर आधुनिक मनुष्यों के हाथ से यह आधार भी निकल चुका है। इसका मूल कारण 'मैं' (इगो) से उसका साक्षात्कार हुआ। यही नीत्से को यह बात आयी थी कि

---

*एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

International Journal of Management, Administration, Leadership & Education

A Bi-Annual Refereed Journal

Academic Avenue
(Publisher & Distributors)

अज्ञेयः परम्परा और आधुनिकता का संदर्भ

डॉ. शंकर कुमार
एसोसिएट प्रोपेफसर (हिन्दी) महाराजा अग्रसेन कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हिन्दी साहित्य में परंपरा और आधुनिकता पर बहस का आरंभ करने वालों में अज्ञेय अग्रगण्य हैं। उन्होंने सोच-समझकर यह निष्कर्ष दिया कि - परंपरा का संबंध केवल अतीत से नहीं है बल्कि इसकी रेखा अतीत से चलकर वर्तमान में समायी हुई है। समय के लगातार प्रवाह में हर घटना गुजरी हुई घटना की याद दिलाती है - 'स्मृति' जिसकी परतें जमती हुई परंपरा को जन्म देती हैं। परंपरा एक सतत् प्रवहमान धारा है जिसमें हमारे पूर्वजों की रचनात्मकता, सर्जनात्मकता का सार हम तक और हमारे आज तक चला आया है। समय के अनवरत प्रवाह में घटित होती आ रही घटनाओं में जो जातिगत अनुभव जन्मते हैं, उनका सत्व निचुड़ कर परंपरा की धारा में आ मिला है। परंपरा की यह प्रवाहमान धारा अनेक कालों, भौगोलिक स्थितियों से होती हुई, अनेक गतियों, दिशाओं को ग्रहण करती हुई, आज, इस 'क्षण' तक पहुँची है - समूचे परिवर्तनों के बावजूद किसी न किसी स्तर पर नैरन्तर्य उसमें बना रहा है। ''परंपरा और इतिहास के भेद को रेखांकित करते हुए अज्ञेय लिखते हैं - ''दोनों में अभिन्न संबंध होने पर भी 'परंपरा' केवल इतिहास अथवा घटना-क्रम नहीं है, वह घटना-क्रम से मिलने वाला जातिगत अनुभव है - अनुभव ही नहीं बल्कि उस अनुभव का ऐसा जीवित स्पन्दन जो जाति को अभिप्रेरित करता है।''[1] अज्ञेय मानते है कि परंपरा का हमारे वर्तमान से यहाँ तक कि भविष्य से भी गहरा संबंध है। वस्तुतः परंपरा में अतीत कुछ नहीं होता, पहले

वर्ष : 5 • अंक : 18 • अक्टूबर-दिसम्बर 2018 • ISSN 2347-6605

वाक् सुधा

VAAK SUDHA

(अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

(A Scholarly Peer Reviewed Journal)

विशेष सूचना :

विचार की प्रतिबद्धता में राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

संरक्षक :

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

रूपेश कुमार चौहान

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक

द्वारा 47, ब्लॉक ए-3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली-43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पावला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दूरभाष संख्या-09555222747, 09540468787, 0991158532, 09266319639

Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vaaksudha.com

डॉ. शंकर कुमार

अज्ञेय : साहित्य का सृजन-परिवेश

हिन्दी साहित्य में रचनाकार अज्ञेय का समय काफी बदलाव का समय था। परंपरागत रीति, नीति के सभी साचे टूट रहे थे। विज्ञान के उदय ने जहां देशों की सीमाएं घटाई वहीं तर्कशील बौद्धिकता की नींव रखी है। पाश्चात्य जगत की आधुनिकता ने भारतीय परिवेश को भी आने घेरे में समेटा। तार्किकता ने कई-कई विचारधाराओं को प्रकाश में लाया जिससे मानव समाज ने अपनी पारंपरिक स्थितियों में बदलाव महसूस किया। हमें यहां यही देखना है कि ये नई धाराएं क्या थी, और इसने किस तरह बदलाव लाने को संभव बनाया। गौर करने वाली बात यहां यह भी है कि उपन्यास और कहानी आने विशिष्ट रूप में आधुनिक समय में ही दिखाई देती है और कारण के पीछे जायें तो यह दिखाई पड़ता है कि उपन्यास हमारे यथार्थ की अभिव्यक्ति है। यथार्थ क्या है यह तो स्वतंत्र रूप से दर्शन का विषय है पर इतना तो यहां कहा जा सकता है कि उपन्यास यह मानकर चलता है कि मानव जीवन यथार्थ है और यह लोक जिसमें मानव-जीवन सम्पन्न होता है, जीवन की ही भांति वास्तव और यथार्थ है। हमारा दर्शन और काव्य लौकिकता के स्थान पर अलौकिकता अथवा अध्यात्म का आधार लेकर चलता था तब इस जगत को 'मिथ्या' या 'प्रेम' या 'माया' कहकर मानव-जीवन को सारहीन अथवा स्वप्न मानती थी।

आधुनिक युग के प्रारंभ में जब पाश्चात्य देशों में विज्ञान का विकास होने लगा तभी इस लोक और जीवन की वास्तविकता का सिद्धांत स्वीकृत हुआ। औपन्यासिक विधा इसी अर्थ में यथार्थ जीवन पर आधारित है। उसमें लौकिक मानव के जीवन का चित्रण होता है। यथार्थ की इस स्थिति पर अनेक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ। क्रिस्टोफर कॉडवेल की विख्यात पुस्तक का नाम "इल्यूजन एण्ड रीयल्टी" यही ध्वनित करता है कि यथार्थ का द्वंद्व आदर्श से नहीं अपितु माया से ही है इस दृष्टि से हमारे प्राचीन महाकाव्यों में और आज के उपन्यास में केवल यही अंतर नहीं है कि एक पद्य में रचा जाता था और दूसरा गद्य में, यह अंतर तो नितांत गौण है। उनका मूलगत अंतर इस बात में है कि महाकाव्यों में यथार्थ और मिथ्या की आंख-मिचौनी रहती है, यथा हनुमान का वायु-मार्ग से गमन, जबकि उपन्यास जीवन की कठोर भूमि पर ही टिका होता है। महाकाव्य में प्रकृति और समाज एवं समाज और व्यक्ति सब एक आध्यात्मिक ऐक्य से बंधे होते हैं उनमें कोई द्वंद्व अथवा संघर्ष नहीं होता।"[1] आज के उपन्यास में हम ठीक इसके विपरीत पाते हैं इसका सबसे महत्वपूर्ण तत्व द्वंद्व ही है।

लौकिकता ने विज्ञान को जन्म दिया और मनुष्य ने यह जाना कि उसके दृष्टि के सामने तो जगत फैला हुआ है वह एक जैसा नहीं रहता, बल्कि वह परिवर्तनशील है। इसके साथ ही साथ अपने बारे में भी उसे पता चला कि उसमें भी परिवर्तन हो सकता है। इसके बाद उसकी जिजीविषा ने उसे प्राकृतिक शक्तियों को वश में करने की ओर उन्मुख किया और अपनी परिस्थिति से जूझना सिखाया। इस प्रकार यथार्थ से मनुष्य का संबंध बना और इस संबंध की सर्वाधिक अभिव्यक्ति उपन्यास या कथा-साहित्य में हुई। "इसीलिए उपन्यास में मानव और प्रकृति का भेद स्थापित हुआ, परिवर्तन के कारण उसमें एक काल-चेतना का समावेश हुआ और व्यक्ति और समाज एवं व्यक्ति और

Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

ISSN : 2395-2873

पंद्रहवां अंक

सितंबर 2018

ISSN : 2395-2873

सहचर....

त्रैमासिक ई-पत्रिका

साहित्य, सिनेमा, कला एवं अनुवाद की पीयर रिव्यू ई-पत्रिका

संपादक
डॉ. आलोक रंजन पांडेय

Fb/sahchar
www.sahchar.com
ईमेल- sahcharpatrika@gmail.com
टेलीग्राम लिंक - https://t.me/joinchat/TAExBL6427zmfC_p

Scanned with CamScanner

ISSN : 2395-2873

मध्ययुगीन समाज : मीरा - विश्वम्भर दत्त काण्डपाल / डॉ. टी. एन. ओझा

मध्यकाल अपने समय और सरोकारों के साथ एक ऐसा काल है जो, मध्यकालीन रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है। ऐसा स्वीकार किया जाता है कि समाज, मनुष्य और साहित्य का आपस में गहरा संबंध है। इनमें से कोई भी घटक एक दूसरे से प्रभावित हुए बिना या प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते। पूरा मध्यकाल इसका सशक्त उदाहरण है लेकिन भक्त कवियों ने इसी मध्ययुगीन समाज से शक्ति ग्रहण करते हुए जो सत्य था, जो सुंदर था और समस्य मानव जाति के कल्याण के लिए था, उसको उद्घाटित किया। समाज दो तरह से काम करता है। पहला तो यह कि उस समाज में रह रहे व्यक्तियों पर अपना रंग छोड़ते हुए अपने में मिला लेता है और दूसरा ऐसी चेतना का विकास करता है जिससे सत्य की प्रतिष्ठा की जा सके। मीरा इसी सत्य की प्रतिष्ठा की जबरदस्त उद्घोषिका हैं।

मीरा का व्यक्तित्व भौतिकता और अध्यात्म के बीच विकसित व्यक्तित्व है। मीरा का घर छोड़ना अध्यात्म चेतना की स्वीकृति है तो दूसरी तरफ भौतिक आसक्तियों की तिलांजलि तथापि वह समाज विमुख नहीं हुई थी और न ही उन्होंने मर्यादा-विहीन मार्ग का ही अनुसरण किया था। हां, वे पूर्णतया परम्परावादी सामाजिक मूल्यों को अंगीकृत नहीं कर सकी थीं। वह शाश्वत मूल्यों की समर्थिका थीं। मीरा का काव्य चिरंतन काव्य है। वह मानवतावाद की सम्पोषिका थीं और सांस्कृतिक अन्तश्चेतना की जागरूक प्रहरिका। भक्त कवियों ने जाति-पाति, धार्मिक संकीर्णता और रूढ़ांध परम्पराओं का स्पष्ट विरोध कर समरसता, समानता तथा मातृत्व भाव को संरक्षण दिया है। ये विश्व को कुटुम्ब मान कर चले हैं। मीरा भी उन्हीं में से एक थी- निष्ठा और प्रेम की उद्घोषिका।

मीरा ने जिन परिस्थितियों का सामना किया था, वे परिस्थितियां सामाजिक रूढ़ांधता की प्रतीक थीं। उन्होंने स्पष्ट कहा था-

लाज सरम तो सभी गुमाई, यां तन चरणां धारि।
साध संगत मेरे मन राजी, भई कुटुम्ब सूं न्यारी।
महल किया राणा मोहि न चाहिये, सारी रेशम पट की।
राजापणां की रीति गुसाई, साधन के संग भटकी।

पूर्वमध्यकाल की प्रतिष्ठा प्रतिरोध की चेतना पर आधारित है। लगभग सभी भक्त कवियों ने सत्ता और सामंती व्यवस्था के प्रति असंतोष जाहिर किया। मीरा को भी राज की चारदीवारी से बाहर निकलने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा या विष का प्याला पीना पड़ा था। राजघराने की वधू महल की चौखट से बाहर निकल कर साधु-सन्तों के साथ उठ बैठ नहीं सकती थी। उसने अपने परिवार के मुखियों से संघर्ष किया था। काफी दुःख भी पाये थे। उसको उसके घरवालों ने भी शरण नहीं दी थी। वस्तुतः मीरा को एक विधवा राजपूतानी के रूप में अपने अस्तित्व के लिए सशक्त संघर्ष करना पड़ा था। क्या वह समग्र दुर्द्धष संघर्ष मीरा की सामाजिक संचेतना की सर्वोत्तम उपलब्धि नहीं है? क्या मीरा का काव्य नारी संघर्ष की उदात्त कहानी नहीं है? समस्त भक्तिवादी कवियों की तरह क्या मीरा का जीवनीय आस्था का संघोषक एवं उसे प्रश्रय देने वाला प्रतीत नहीं होता है?

Scanned with CamScanner

International Journal of Scientific Research in Multidisciplinary Studies
Vol.4, Issue.11, pp.36-39, November (2018)

Review Paper
E-ISSN: 2454-9312
P-ISSN: 2454-6143

Cultural Representation on Television (In Special Context to Soap Operas)

Tej Narayan Ojha[1*], Abhishek Kr Singh[2]

[1]Senior Faculty, Maharaja Agrasen College, University of Delhi, India
[2]Academic Expert and Media Researcher

Available online at: www.isroset.org

Received: 08/Nov/2018, Accepted: 20/Nov/2018, Online: 30/Nov/2018

Abstract- In view of the changing pattern of the media in society, great attention has been paid to globalization. The Indians are very enthusiastic about the beginnings of globalization and its impact on local cultural transformation. Television is also performing in the race of introducing the localization of culture and promoting the value of regional significance as an application of glocalisation. Specific Television programs such as Soap Operas have shown a deep signs of perfect glocalization by combining the idea of globalization with the idea of local consideration. The Indian soap operas have cultural presentation with its social significance as supportive elements that actually define the socio-cultural statistics of the plot of serials.

In the study, the daily soaps that will be analysed, includes Ballika Vadhu (Colors Channel), Saath Nibhana Sathiya (Star Plus), Yeh Hai Mohabbatein (Star Plus) and Badho bahu (&TV) and Ganga (&TV). The study majorly focuses on whether the Indian soap operas are representing various cultures in their content or this is leading towards 'Cultural Marketing'. The aim is to also know about the role of Indian Soap Operas in cultural exchange. The methodology adopted in the present research is mainly secondary.

Key words- Television, Soap Operas, Culture, Social Transformation.

I. INTRODUCTION

Television is a very effective audio-visual mode of mass communication. Commonly, television is one of the most prominent modes of communication the Indian society. People are really addicted to the television. Programs on the television have a great influence on the life and life style of social capitals. Since year 2000 television undergoes a severe change in the taste of program. There is major transformation of peoples demand and regional influence on the soap operas of television[1].

Television is a great socialization agent in the society which influences people's culture in the society. Television is a living room medium and has become an inseparable part of our daily life. It performs a major role in development of country by creating awareness. Television is a credible & a believable medium. Generally people believe what they see. People assume whatever TV is showing is true. Its believability factor makes it more powerful medium. Because of media, it has become possible for world to come on a common platform for mass production and mass consumption of content.

Television uses various formats of programmes like reality shows, interview, chat shows, news bulletins, sports programmes, soap operas to serve a wide variety of audience with different tastes, likes & dislikes, attitudes & those belonging to different cultures. When we talk about media, apart from news channels and agencies, the major role is played by television serials popularly known as 'Soap Operas'. While news gives us the factual information of the current happenings, the operas helps us to connect with diversified cultural value system of incredible India. Depending on the social tone, awareness and other requirements, we select and control the televisions channels. Different programs have different motives and objectives. Some programs are used for social awareness, some entertain and other used to inform and educate the community. It has been repeatedly proved that has a deep impact on the social sentiments.

People need a change in their life. Similarly, Television regularly influences the social style of people. It can be said that Television influence diversity. Television is offered in different forms in each part of its audience, with different cultural, economic and geographical distribution[2]

News bulletin, Reality shows, Cookery shows, Panel discussions, Cartoons, Music, Movies, Documentaries, Soap operas are some of commonly used formats in television. All the formats shown on television are either fiction or nonfiction. Fiction is those formats which are based on

© 2018, IJSRMS All Rights Reserved

Scanned with CamScanner

Research Paper
Impact Factor: 5.389
Peer Reviewed Monthly Journal

IJMDRR
E- ISSN –2395-1885
ISSN -2395-1877

MEDIA GLOBALIZATION AND CULTURAL TRANSFORMATION IN INDIA: AN EVALUATION

Dr. Tej Narayan Ojha* **Abhishek Kr Singh****
*Senior Faculty, Maharaja Agrasen College, University of Delhi.
**Academic Expert and Media Researcher.

Abstract
Globalization came to India through the media reforms and is slowly converting our culture and self-image. Media Globalization is mainly responsible for the social transformation and change in modern culture; in fact, it lies at the heart of modern culture. Media Globalization is the main cause of the modern cultural experience. The challenges faced by this paper are two folds: to sympathetic how cultural changes carried about by media globalization can affect social institutions. These cultural forms or prospects interact with and convert local cultures which are often knotted with tradition. Throughout this process, traditional uniqueness can weaken it possible to express local cultures, but can also become a vehicle used to express strategies of global culture, how globalization can affect broader cultural change. Media Globalization has spread powerful cultural forms, such as international popular culture, media, culture and the culture of the individual entity assertion. In the light of above mentioned facts, the present research paper tried to evaluate the impact of media globalization in Indian cultural transformation. The research methodology adopted in the research is mainly secondary in nature.

Key Words: Media, Globalization, Culture, Social Transformation.

Introduction

The Globalization of Media plays a crucial role in the present world. Globalization has left its Fingerprints on every Field of Life. Globalization not only has an impact on the global Exchange of Opinions and Ideas but it also Changes the style of Life and the standard of living of People around the globe. The culture in India has no different nature. Globalization has a deep impact on the India's deeply-rooted traditions and customs which are getting changed on the name of generation "X". India has a prosperous cultural record, and the historical background, it's very popular throughout the world. Globalization is a general phenomenon, not only in India in all over the world. In the name of modernization and westernization, globalization spreads all over the world. The cultural change is natural and is never static. In Indian scenario, the culture is very unique and it depends highly on the geographical importance[1].

In a similar way, the Influence of the Media is very important and remarkable in this context as the process of globalization is always supported by media contents and media accessibility based on information, in fact we are living in the time of globalization based information society.

The present information society is connected with the support of media and social culture are spreading and affecting all corners of life and social phenomenon's. Culture of any society certainly includes various factors like fashion, sports, Architecture, Education, religion, appearance and values[2]. Globalizations with the support of media connect the world social factors and influence each other. The language of social capitals and traditional behavior of people have changed drastically. As the definition of globalization, there are interconnects of social factors through the media especially the new media. Media globalization has changed the format of media contents, i.e. songs, cinema, soap operas, TV program, or Web site. Thus, globalization, therefore, is a process that connects the values of societies through products or other meaning-making forms.

The Objectives of the Study

The present study paper objectives are mentioned below:-

1. To explore the impact of Media globalization on Indian culture.
2. To Analyze the role of media globalization in marketing of global culture in India.

Scanned with CamScanner

Ruminations | ISSN 2229-6751 | December 2018 (Suppl.)
UGC No. 2108
Jr. No. 49164

प्रेमचन्द की नैराष्य लीलाः विधवा समस्या

डॉ॰ तेज नारायण ओझा, मनीता ठाकुर
मेवाड़ विश्वविद्यालय, गंगरार, चितौड़गढ़, राजस्थान

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द का नाम बहुत सम्मान से लिया जाता है। इसका कारण यह है कि इन्होने हिन्दी साहित्य को ऐसी रचनाएं भेंट की है, जिनमें कल्पना का लेश-मात्र चिन्ह भी नहीं दिखायी देता। इनकी सभी रचनाएं सच्चाई के सागर में डुबी हुई रहती है।

प्रेमचन्द जी की रचनाएँ समाज व राजनीति तथा कृषक जीवन से सम्बन्धित होती है। उन्होंने अपने जीवन में जो देखा और भोगा, उसे अपने रचनाओं के माध्यम से पाठको तक पहुँचाया। समाज में फैली कुरीतियों का खुलकर वर्णन किया, उनका विरोध किया तथा साथ में यह भी बताया कि इसका समाधान कैसे किया जाए और इसे समाप्त कैसे किया जाए।

प्रेमचन्द जी, हिन्दी साहित्य के वे रत्न है, जिन्होंने पूरे संसार को उज्जवलमय बनाया है, प्रेमचन्द जी के उपन्यास हो या कहानियाँ या फिर नाटक इनके सभी रचनाएँ यर्थाथवादी होती हैं, उन्हें पढकर ऐसा लगता है जैसे घटना हमारे सामने ही घट रही है और यहीं एक अच्छे रचनाकार की विशेषता होती है।

उपन्यास के क्षेत्र में उनके योगदान को देखकर बंगाल के विख्यात 'उपन्यासकार षरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें उपन्यास सम्राट कहकर सम्बोधित किया था। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परम्परा का विकास किया जिसने पूरी सदी के साहित्य का मार्ग दर्शन किया। उनका लेखन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विरासत है जिसके बिना हिन्दी के विकास का अध्ययन अधूरा होगा। वे एक संवेदनषील लेखक सचेत नागरिक कुषल वक्ता सुधी संपादक थे।

प्रेमचन्द जी ने साहित्य को सच्चाई के धरातल पर उतारा है। उन्होंने जीवन और कालखण्ड की सच्चाई को पन्ने पर उतारा है। प्रेमचन्द जी हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक है। इन्होंने हिन्दी कहानी में आन्दर्शोन्मुख यथार्थवाद की एक नई परम्परा शुरू की।

प्रेमचन्द जी ने समाज में, फैली कुरीतियों को अपनी रचना का विशय बनाया में, उन कुरीतियों की निन्दा भी की। उन कुरीतियों व विड़म्बनाओं से जीवन में क्या प्रभाव पडता है वह भी प्रेमचन्द जी ने बखूबी वर्णन किया है। प्रेमचन्द जी अपनी रचनाओं में विभिन्न समस्याओं कों लेकर सामने आये है, ये वे समस्याएं है जो नारी के जीवन पर विशेष रूप से प्रभाव डालती है। जैसे सती प्रथा, दहेज समस्या, वेश्यावृत्ति समस्या, विधवा समस्या तथा बाल-विवाह इत्यादि अनेक समस्याएं है जो नारी को भीतर ही भीतर खोखला कर देती है। प्रेमचन्द जी ने इन समस्याओं में से एक समस्या को अपनी कहानी "नैराष्य लीला" में दिखाया है। वह समस्या "विधवा समस्या" है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में विधवा नारी की अवस्था के दयनीय चित्र मिलते है। उनके 'प्रतिज्ञा'

Scanned with CamScanner

Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:4.081
Volume-12, Issue-4, March-2019 www.researchguru.net

Materialization of Indian Media Contents: A Study (In Special Reference to Advertisements)

Dr. Tej Narayan Ojha
Sr. Faculty, Maharaja Agrasen College,
(University of Delhi)

Abhishek K Singh
Academician, Researcher and Media Expert

Abstract: - Media globalization has given a new edge to the materialization of contents in the global society and moves hand to hand with consumerism. Today's advertising is a main driving power in the media. It plays an important role in the Media's existence and profit. In the present time of media globalization, the market is full of products, services and ideas promoted and supported by advertisings. These ads are specifically designed to be easily recognizable to the public. Present advertisings are designed to represent particular culture and specific social images. Modern society is more equipped with the commercialization and commodities. Advertisements are the demand creators that oblige people to feel a need or want for that unambiguous product. The visuals, slogans, images, celebs presentations are mainly displayed and demonstrated in the advertisements act as the power which mainly present and represent the culture of the particular society. Advertisements, at times, manipulate the cultural, economical, physical and social needs by engendering and provoking hope in the minds of the audience. These transformations then construct the subsistence and hence contribute in the consequences of the proximity of both the terms i.e. advertisements and culture.

Keywords: Media material, Culture, Indian Advertisements

Introduction

In the age of media modernisation and liberalization, the media is certainly influenced by the local fashion and representation of various cultural factors. The dominance of cultural variables plays a very significant role on the media contents. Cultural content in the media is carried forward from one generation to the next and ultimately represent the current changes in media patterns. The media are the mirror of the society and have intense cultural importance and social reflection. There is a variety of information distributed on the commercial media, such as advertising of many brands which focus on the target consumers of various background and cultural significance. The advertisements always focus on the mind of consumers and buyers. Advertising concepts are based on facts, in order to promote the realization of the product and create an impact in society.

Advertising plays a very important role in framing our social concepts and present the peoples view in a particular order. Advertisement mainly directs people view on products i.e. the way people think, understand act and react. Advertising, which we constantly consume on various media's creates an image of society and shapes our perceptions and create what many needs. Even deeper than the impact of our

Scanned with CamScanner

ISSN : 2395-2873

सोलहवां अंक
ISSN NO. – 2395-2873

सहचर..
(साहित्य, सिनेमा और कला एवं अनुवाद की ई-पत्रिका)

छायावाद विशेषांक

फरवरी – अप्रैल 2019

संपादक
डॉ. आलोक रंजन पांडेय

sahchar.com

Scanned with CamScanner

ISSN : 2395-2873

मध्यवर्गीय नारी, समाज और सेवासदन - मनीता ठाकुर / डॉ. टी. एन. ओझा

समाज में नारियों की परिस्थिति अलग-अलग होती है। अलग-अलग वर्ग की नारियों की परिस्थिति भी अलग-अलग होती है। उच्च वर्ग में रह रही स्त्रियों का जीवन अलग प्रकार का होता हैं उन्हें किसी भी वस्तु के लिए सोचना नहीं पड़ता। लेकिन ठीक इसके विपरीत मध्यवर्गीय नारी की परिस्थिति उच्च वर्ग की नारी की परिस्थिति से भिन्न है। उसे किसी भी काम को करने से पहले सोचना पड़ता है। उसकी जरूरत उसके परिवार पर निर्भर करती है। मध्यवर्गीय नारी ज्यादातर शिक्षित नहीं होती है। जिसके कारण उन्हें जीवन में बहुत-सी समस्याओं को देखना पड़ता है।

प्रेमचन्द जी ने साहित्य में नारी को केंद्र में रखकर उसकी समस्याओं, परिस्थितियों और उसके जीवन से जुड़े पहलुओं को अपने उपन्यास के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है। लेखन एक ऐसी कला है जिसके माध्यम से हम समाज को सच का आईना दिखा सकते हैं। प्रेमचन्द जी का लेखन, हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विरासत है, जिसके बिना हिन्दी के विकास का अध्ययन अधूरा है।

प्रेमचन्द जी का लेखन इतना स्पष्ट होता है कि इन्हें 'कलम का सिपाही' भी कहा जाता था। प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियों व उपन्यासों में समाज में फैल रही कुसंगतियों व विडम्बनाओं की चर्चा की है। साथ ही साथ उन्हें विषय बनाया अपनी रचनाओं का।

प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं में समाज से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को प्रदर्शित किया है। समाज में नारियाँ किन-किन परिस्थितियों से जूझती हैं तथा उसे समाज में क्या-क्या सुनना पड़ता है। उन सभी समस्याओं व परेशानियों को प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियों, उपन्यासों का विषय बनाया है। '20वीं शताब्दी के पहले स्त्री शिक्षा स्वतंत्रता तथा सम्पति के सभी अधिकारों से वंचित थी। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में नारी समस्याओं, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, विधवाओं की दुर्दशा आदि की भत्र्सना की गई तथा स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वतंत्रता तथा स्त्रियों की उन्नति जैसे नवीन विषयों को उठाया गया, किन्तु इनमें नारी के प्रति उदात्त भाव की अभिव्यंजना का सर्वथा अभाव रहा है। सर्वप्रथम, छायावादी कवियों ने नारी को संवेदनशील भावना से देखा और यथार्थ चित्रण एवं मानवतावाद के धरातल पर जो चित्र अंकित किए उनमें सेवाभाव, दया, ममता, संयम सहिष्णुता, प्यार, त्याग, साहस एवं प्रेरणा के गुणों का प्राधान्य है।।

प्रेमचन्द जी के उपन्यास सच्चाई के धरातल में दिखाई देते हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में हर परिस्थिति से हम पाठकों को अवगत कराया है। इनकी कहानियाँ या उपन्यास, किसी को भी पढ़ लें, उसे पढ़कर हमें ऐसा अनुभव होता है जैसे कि वह घटना या कहानी हमारे सामने ही घट रही है। इन्होंने बहुत रचनाएँ लिखी हैं, जिनमें नारियों की परिस्थितियों का बखूबी वर्णन किया है। उनकी समस्याओं के प्रति जो चिन्ता प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्यक्त की हैं, उसका वर्णन करना आसान नहीं है। प्रेमचन्द जी का उपन्यास 'सेवासदन' एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय नारी की परिस्थिति को दर्शाया गया है। किस तरह एक मध्यवर्गीय नारी समस्याओं के घेरे में घिर कर वो काम कर बैठती है जो कभी उसने सोचा न हो। इसी तरह इस उपन्यास में, सुमन एक सीधी-साधी स्त्री होती है। जो परिस्थितियों का शिकार होकर वेश्यावृत्ति के दल-दल में फंस जाती है और उसका खामियाजा भुगतना

Scanned with CamScanner

IMPACT FACTOR – 5.61

LangLit (14) ISSN 2349-5189

An International Peer-Reviewed Open Access Journal

LangLit Latur (MS) India AIPROAJ

IMPACT OF ACADEMIC RESEARCH IN HIGHER EDUCATION SYSTEM: AN ANALYSIS OF PRESENT SCENARIO

DR. TEJ NARAYAN OJHA
Sr. Faculty,
Maharaja Agrasen College
University of Delhi

ABHISHEK K. SINGH
Academic Trainer And
Media Expert
Delhi

ABSTRACT:

Higher education plays a key role in society by creating new knowledge, transmitting it to students and fostering innovation. Research-based education has recently attracted increasing interest in higher education system. The present study aims to establish and demonstrate the link between the higher education and the research application. The present research papers mainly focused on the indicators of research application and its impact on the higher education system in Delhi region. The results show that these indicators certainly have an effect on different factors which is very direct, not unavoidable and significant.

Keywords: Higher Education System, Research Oriented Teaching, Research Education, Quality Education, Knowledge Skills

I. Introduction

In the present scenario, the relation between academics, research and higher education is not well designed. There are significant lacks of mutual relationship among these important variables as it is not sufficiently taken into serious account. The complexity of research can be considered as one of the reasons which motivates people in academics and higher education to ignore the value and effectiveness of research on teaching and learning. Research, no doubt, provides comprehensive details on the topics and related concepts. It can also make clear how a certain research provides a clear perceptive of edification and learning (Broadfoot, 1981). The research is also very significant as it scientifically analyzes the reason based solution to the academic issues of the present era as it reduces the possibility of errors and thus gives a definite conclusion. The possibility of conducting research to solve scientific problems leads educators to see this as an important factor in teaching. It is seen as an efficient mechanism in the contemporary education system. Research in education is very vital as it provides a variety of benefits which ultimately enhance the social skills, awareness, new development in society, and human consideration with cultural diversity. Education is increasingly seen as a social investment and in this regards it's very important to conduct progressive research to understand the social parameters for quality solution of the social issues. Educational research certainly provides skills that value the social and academic development and enhance the ability of lifetime earning capacity.

Scanned with CamScanner

Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-1, June 2019
Impact Factor: 4.081
www.researchguru.net

महिला उत्पीड़न के बरक्स समाचार पत्रों का संवेदनात्मक बोध

डॉ. तेजनारायण ओझा
असिस्टेंट प्रोफेसर, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. जितेंद्र कुमार भगत
असिस्टेंट प्रोफेसर (तदर्थ), महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार:

जनसंचार के सभी माध्यम प्रत्यक्ष रुप से या परोक्ष रूप से ज्यादातर पूंजीपतियों के नियंत्रण में है। महिलाओं के साथ होनेवाले दुर्व्यवहार की प्रस्तुति में समाचार पत्रों वैचारिक हस्तक्षेप की अपेक्षा की जाती है। 2018 के आरंभ में 'मी टू' नाम से महिलाओं ने जो मुहिम चलाया, अखबार में उसे प्रमुखता से स्थान मिला। पहली बार अपने यौन उत्पीड़न पर महिलाओं ने खुलकर अपनी बात रखी। लेकिन ये उच्चवर्गीय महिलाओं की पीड़ा थी। मध्यम वर्गीय और निम्नवर्गीय महिलाओं की स्थिति बहुत बदतर है। सौ में से इनकी एक खबर ही सामने आ पाती हैं। समाचार पत्रों में महिला-उत्पीड़न और उनसे जुड़ी खबरों से संबद्ध ऑकड़ों पर आधारित आलेख में उल्लेख्य शोध ऐसी खबरों की संख्या, कॉलम की संख्या, मुख्य पृष्ठ या संपादकीय में प्राप्त जगह, प्रबंधन की रूचि के आधार पर जेंडर समीकरण को परखने की कोशिश करती है। अखबार में छपनेवाली ऐसी खबरों की प्रकृति देखें तो पहली नजर में काफी निराशाजनक लगता है। ऐसे असभ्य समाज के प्रति उदासीनता और जुगुप्सा उत्पन्न होने लगती है। न्याय व्यवस्था और सामाजिक तंत्र से हमारी आस्था डगमगाने लगती है। प्रेम, विवाह, परिवार जैसे उच्चतर मूल्य-व्यवस्था को हम क्षरित होते हुए देखते हैं।

महिला उत्पीड़न से जुड़ी जितनी वारदातें हैं, उनमें सर्वाधिक मामले बलात्कार और यौन उत्पीड़न के हैं। 16 दिसंबर की घटना का देश के सभी अखबारों ने पुरजोर विरोध किया और समाज के इस घिनौने पक्ष को बड़ी बेबाकी से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। मीडिया समाज का वो अंग है जो समाज को चिंतनशील, प्रगतिशील बनाता है। नारी विषय पर भी मीडिया ने अपने चरित्र के अनुरूप एजेंडा सेटिंग का काम किया है। मीडिया द्वारा लोगों तक वो वह बात भी पहुंची जो मीडिया के जरिए महिला समाज तक पहुँचना चाहता था। परंतु इसके बावजूद महिला उत्पीड़न एवं बलात्कार के मामले थम नहीं रहे हैं, अतः यहां दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर ढूंढना अनिवार्य है-

1) क्या मीडिया के आलेखों के अंतर्वस्तु में कोई कमी है?

2) आज मीडिया उन सही कारकों को चिन्हित कर पाये हैं जो महिलाओं के प्रति पुरूष समाज की विकृत मानसिकता के लिए जिम्मेदार हैं?

खबरों के केंद्र में समाज ही है और अखबार इसी समाज का अवलोकक है और एक हद तक आलोचक भी। इसलिए अखबार पर प्रश्न चिह्न लगाने से पहले समाज को खुद में भी बदलाव लाना होगा। यह अवश्य है कि अखबार को अपने भीतर संवेदनात्मक बोध जागृत करना होगा। संवेदना से उपजे इस बोध में पीड़िता के दुख से तादात्मय स्थापित कर पाने की तड़प होगी और न्याय प्रक्रिया को तीव्रतर करने की लालसा भी मौजूद होगी। व्यवसायिक हित और प्रमुख अखबार बने रहने के होड़ के बीच इस संवेदनात्मक बोध को हासिल करना चुनौती है मगर सामाजिक सरोकार से गहरे जुड़े होने के दावे को यथार्थ करने की इस विवशता से ही अखबार जीवित रह सकता है और समाज सचेत।

Scanned with CamScanner

197

कल्पना का रचनात्मक पक्ष 145
डॉ. अनिल कुमार सिंह

हिन्दी साहित्य में महिला लेखन की स्थापित छवि को तोड़ता शक्तिशाली उपन्यास-'महाभोज' 149
डॉ. रिम्पी खिल्लन

दलित साहित्य की पृष्ठभूमि और अंतर्विरोध 152
डॉ. पदमा राम परिहार

आधुनिक रचनाशीलता में लोक-चेतना (संदर्भ : अंधेर नगरी, गोदान और मैला आँचल)........... 157
डॉ. रामेश्वर राय

सुशीला टाकभौरे की साहित्यिक दृष्टि 162
डॉ. सुमित्रा महरोल

स्वयं प्रकाश की कहानियों में घर 166
रचना सिंह

छायावाद के सौ साल-एक दृष्टि 171
डॉ. संगीता राय

पद्मावत में व्यक्त स्त्री-धर्म और जेंडर की अवधारणा 176
रेनू गुप्ता

दलित विमर्श का संदर्भ और ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ 180
डॉ. सुनीता सक्सेना

महाभारत में चित्रित कर्ण का आदर्श व्यक्तित्व 184
डॉ. धनपति कश्यप

भारतेन्दुयुग : अंतर्जातीय संपर्क एवं सांस्कृतिक अस्मिता 189
डॉ. भास्कर लाल कर्ण

भूमंडलीकरण और सूचना क्रांति का समाज पर प्रभाव : विविध पक्ष और नयी चुनौतियाँ 196
डॉ. रिम्पी खिल्लन सिंह

भारतीय लोक-जीवन और अमीर खुसरो का काव्य 199
डॉ. संगीता राय

हिन्दी पत्रकारिता में बदलाव : बदलते समाज का आईना 205
डॉ. सीमा रानी

भारतीय राष्ट्रवाद का विकास 214
डॉ. कैलाश नारायण तिवारी

वैश्वीकरण : प्रकृति और विशेषताएँ 218
डॉ. अंकिता कुमारी

संस्कृत व्याकरण तथा भाषा-दर्शन के क्षेत्र में मिथिला का योगदान 223
डॉ. रणजीत कुमार मिश्र

The Predicament of Women as Subaltern in Roots and Shadows ———— 227
Dr. Seema Naz

सिंधु घाटी सभ्यता का नगर विन्यास 231
डॉ. एम.एम. रहमान

Challenges of Self-reliance in India ———— 234
Dr. Sumit Prasher

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की नाट्यानुभूति.... 238
डॉ. नंदकिशोर

प्रमाणमञ्जरी में मोक्ष विचार 242
डॉ. दिलीप कुमार झा

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना में बदलाव 246
डॉ. देव कुमार

अम्बेडकर और राष्ट्रवाद : समकालीन प्रासंगिकता 252
डॉ. सुषमा गुप्ता

'अपने-अपने पिंजरे' में चित्रित दलित संघर्ष 256
डॉ. चन्द्रशेखर राम

'गबन' में चित्रित मध्यवर्गीय स्त्री 259
डॉ. राम किशोर यादव / डॉ. चन्द्रशेखर राम

The Master of Hegelian Dialectics ———— 263
Dr. C. V. Babu

বাংলা সাহিত্যে মঙ্গলকাব্যের নবনির্মাণ : বিষয় ও তাৎপর্য 269
ড. অনির্বাণ সাহু

chandrashekhar Ram

198

'अपने-अपने पिंजरे' में चित्रित दलित संघर्ष

डॉ. चन्द्रशेखर राम

मोहनदास नैमिशराय 'अपने-अपने पिंजरे' आत्मकथा में अपने जीवन से संबंधित उन तमाम घटनाओं का चित्र उकेरते हैं, जो उनके जीवन में आंखों के सामने घटित हुई है। लेखक ने अपनी आत्मकथा में जिन घटना का चित्र उकेरा है वह सिर्फ लेखक का ही नहीं बल्कि दलित समुदाय के प्रत्येक घर की दास्तान है। इस आत्मकथा में लेखक ने भोगे हुए, देखे हुए सच का वर्णन तो करता है साथ ही साथ वह अपनी पीड़ा या व्यथा या किसी भी घटना का चित्र उकेरते समय भारतीय समाज के वास्तविक प्रारुप का सच उजागर करते समय वह किसी भी घटना को छिपाता नहीं है। उस घटना को खुलकर बेबाक ढंग से वर्णन समाज के समक्ष रखता है। आत्मकथाकार ने अपनी आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में ऐसी घटना का चित्र उकेरता है, जो भारतीय समाज की रीढ़ है। इस तरह की व्यवस्था दलित समुदाय के लिए मनुवादियों के द्वारा थोपी गयी थी, जिसके तहत दलितों को रहना पड़ता था स्वयं आत्मकथाकार को खुद ऐसे ही व्यवस्था का शिकार होना पड़ा जिसका वह वर्णन करता है-''हमारी बस्तियां नंगी और सपाट होतीं, गंधहीन, पर अजीब-सी दुर्गंध परिवेश में फैली होतीं। घर-घर में चमड़ा भरा होता, आंगन में चमड़े के गीले टुकड़े सूखने के लिए पड़े होते। ऐसी बस्तियों के आस-पास हवा चलती तो महसूस होता, यहीं कहीं चमारवाड़ा है।''[1]

आत्मकथाकार ने जिस प्रकार से भारतीय समाज के वास्तविक रूप और चरित्र का वर्णन करता है, जिससे भारतीय समाज का मुखौटा सामने आता है, इस प्रकार भारतीय समाज इतना पिछड़ा हुआ था। ऐसे स्थानों पर दलित समुदाय का ठिकाना था जहां पर किसी प्रकार का स्वच्छ वातावरण नहीं था। वहां दुर्गंध, दरिद्रता और सड़ांध मौजूद थी। ऐसे ही उक्त व्यवस्था के माहौल में जन्मे मोहनदास नैमिशराय का दलित परिवार में जन्म हुआ। जन्म के कुछ दिनों के बाद मां का देहान्त हो गया और 'ताई' और 'ताऊ' के संरक्षण और देख-रेख में पले-बढ़े। उन्हें आस-पड़ोस का स्नेह और प्यार मिला। इतना प्यार और स्नेह ने उन्हें संवेदनशील बना दिया कि वह बड़ा होकर भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू का विश्लेषण अपनी दृष्टि से या अपने नजरिये से, भारतीय समाज की युक्त व्यवस्था का चित्र जांचने-परखने का कार्य आरंभ कर दिया तो उसे अपनी जाति की वर्तमान हकीकत का पता चलता है कि जाति व्यवस्था कितनी दलित के लिए घातक है। इसी सच को सामने लाने के लिए रचनाकार ने 'अपने-अपने पिंजरे' नामक आत्मकथा में स्पष्ट शब्दों में कहा, ''पीढ़ी दर पीढ़ी हम गुलाम थे। इधर मां बच्चा जनती और उधर पैदा होने वाले बच्चे के माथे पर उसकी जात लिख दी जाती। उसे उसकी जात की पहचान से रू-ब-रू करा दिया जाता।''[2]

इस तरह की घटनाएं लेखक की बेचैनी को बढ़ा देती है। लेखक की बेचैनी का परिणाम है कि वह अपनी आत्मकथा में इतिहास के उन पन्नों को टटोलने का कार्य जारी रखा है। इस दौरान लेखक को यह पता चला कि दलित समाज के लिए किस प्रकार की व्यवस्था भारतीय समाज में निहित है, जहां पर अत्याचार, शोषण, अपमानित, अन्याय आदि जैसी व्यवस्था दलितों के लिए सुरक्षित है। सवर्ण समाज के द्वारा थोपी हुई व्यवस्था का वर्णन

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2456-0835

Chandra Shekhar Ram

आत्मकथाकार स्वयं करता है, ''हम लंबे समय से अछूत कहे जाते थे, पर गुनहगार न थे हम। हम हारे हुए लोग थे जिन्हें आर्यों ने जीतकर हाशिये पर डाल दिया था। हमारे पास अंग्रेजों के द्वारा दिये गए तमगे, मेडल, पुरस्कार न थे। हमारे पास था सिर्फ कड़वा अतीत और जख्मी अनुभव। और शरीर पर चोट पड़ती तो वे ही जख्म हरे हो जाते। दो सदियों में रहते-रहते हम अपने इतिहास से कट गये थे। अपनी संस्कृति भूल गये थे। हमारे हथियार भोथरे हो गये। पहले हम उजड़े फिर बस्तियां, बाद में संस्कृति।''[3]

लेखक ने दलित सवालों को अपनी आत्मकथा में उठाया है, जो सवाल दलित के लिए भारतीय समाज के द्वारा थोपा गया था। उन्हीं सवालों को लेखक ने 'अपने-अपने पिंजरे' नामक आत्मकथा में गहराई में जाकर छान-बीन की है। इसी छान-बीन के दौरान सवर्ण समाज की मानसिकता और उनके सोच एवं उनके विचार दलित समुदाय के प्रति किस प्रकार से शब्दों के बाण चलाते हैं। लेखक के शब्दों में, ''बात-बात पर हमें वे चमरट्टे कहते थे और औरतों को चमरट्टी। वे एक-दूसरे से बातें करते तो पुकारते, अरे वो है न चमरट्टा, अरी वो चमारी, अबे क्या है चमार के। दरअसल यह उनका तकिया कलाम था ... उनमें अधिकतर हमें बहुत गिरा हुआ इंसान समझते थे।''[4]

भारतीय समाज की यह सच्चाई है कि दलित समुदाय के लिए सवर्ण समाज ने किस प्रकार से नफरत का बीज बोया है, उनके शब्दों से जगजाहिर होता है, कि बात-बात में उनके द्वारा प्रताड़ित और अपमानित दलितों को किया जाता रहा है जिसका वर्णन आत्मकथाकार ने उपरोक्त कथनों में किया है। इससे बड़ी विडम्बना भारतीय समाज के लिए और क्या हो सकती है? इसके अतिरिक्त मोहनदास नैमिशराय ने 'अपने-अपने पिंजरे' में बहुत से सवाल उठाये हैं। किस प्रकार भारतीय समाज संरचना का गठन सवर्ण समाज ने किया है। उसका विस्तार से आत्मकथाकार ने वर्णन करते समय मेरठ की उन बस्तियों, गलियों, मुहल्लों आदि का वर्णन करते हैं। ये सारे चित्र जाति के आधार पर निर्मित हैं। लेखक के अनुसार, ''जतीवाड़ा, पैंठवाड़ा, जटवाड़ा, छीपीवाड़ा, खटीकवाड़ा, ठठेरवाड़ा, बनियावाड़ा आदि-आदि ... नील की गली, पत्ते वाली गली, रोहतगी वाली गली, सुनार गली, कसाइयों वाली गली ... लोढ़ों वाला पुल, सैनी पुल, कसाइयों की पुलिया, धोबियों का पुल।''[5]

इसी बात को स्वीकार करते हुए डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, ''किसी भारतीय भाषा के वर्ग और जाति पर आधारित शहरी ढांचे की ऐसी झलक पहली बार किसी साहित्यिक रचना में दिखाई देती है।''[6]

आत्मकथाकार बार-बार प्रश्न उठाता है कि ये जातियां क्या होती हैं? उसे कदम-कदम पर चमार जाति का अहसास कराया जाता है। इस तरह का आचरण सवर्ण समाज का दलितों के प्रति रहा है, इस तरह की घटनाएं सिर्फ आत्मकथाकार के साथ ही नहीं घटती हैं बल्कि ऐसी घटनाएं प्रत्येक दलित के साथ घटती रही हैं जिसका वर्णन अपनी आत्मकथा में किया है। उन्होंने कहा है, ''अरे चौधरिया, ये किसके बच्चे हैं?''

चौधरिया डर से उत्तर दे देता - ''सब ससुरे चमारों के हैं? सब भरष्ट करके रख दिया है इन्होंने।''[7]

आत्मकथाकार ने छुआछूत जैसी घिनौनी व्यवस्था का भी चित्रण अपनी आत्मकथा में किया है। सवर्ण समाज के लोग दलितों को मंदिरों में जाने से रोकते थे, उनके लिए मंदिर के दरवाजे बंद थे, मंदिर के पुजारी और पुरोहित दलित समुदाय के बच्चों को मंदिर में घुसने नहीं देते अर्थात् भगवान को भी वे लोग अपने मुट्ठी में बांध रखा था। 'अपने-अपने पिंजरे' आत्मकथा में लेखक ने जिसका विस्तार से वर्णन किया है, ''मंदिरों और सवर्णों के लिए हम शूद्र थे। अछूत थे। दलित थे, पर इन्सान न थे। हमारी छाया भी उनके लिए अपवित्र थी। हम मंदिर में घुस न जायें शायद यही सोचकर मंदिर की चारदीवारी बनवाई गई थी।''[8]

इस तरह की घटनाएं सिर्फ मंदिरों में ही नहीं स्कूलों में भी होती रही है जिस स्कूल में लेखक पढ़ता है, वहां सवर्ण समुदाय के लोग उसे चमारों का स्कूल कहते हैं। स्वयं स्कूल के अध्यापक भी चमार कहकर ही पुकारते हैं। इससे खतरनाक बात और क्या हो सकती है? जिसका विवरण आत्मकथाकार स्वयं करता है, ''स्कूल में अधिकतर अध्यापक बात-बात में हमारी बस्ती का नाम लेते थे। धीरे-धीरे स्कूल में हमारी पहचान बन गई थी। वह पहचान थी कि हम चमार हैं। अध्यापक हमारे नाम लेकर कम बुलाते थे, बात-बात में चमार दरवज्जे वाले, कह संबोधन किया करते थे।''[9]

आर्थिक अभाव के कारण बहुत से दलित बच्चों के पास ड्रेस नहीं होती थी, उन्हें स्कूल में अनेक प्रकार की

200

सजाएं दी जाती रही है जिसके कारण बहुत से दलित स्कूल छोड़ने के लिए विवश हो जाते थे। सवर्ण अध्यापक भी दलित छात्रों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करते थे। छोटी से छोटी गलती पर उन्हें कठोर से कठोर दण्ड देते थे। उनके लिए वे अपशब्दों का भी प्रयोग करते थे। लेखक के अनुसार, ''जो छात्र ड्रेस में नहीं होते उन सभी को बहुत कुछ सुनना पड़ता था। बार-बार हमें कहा जाता, ''अबे तुमसे पढ़ने के लिए कौन कहता है। बस जूते-चप्पल बनाओ और आराम से रहो। चले आते हैं ससुरे न जाने कहां-कहां से।''10

आत्मकथाकार ने अपने आत्मकथा में एक ऐसा सवाल उठाया है कि सवर्ण समुदाय के लोग जातीय श्रेष्ठता के कारण अपने आपको इतना श्रेष्ठ मानते थे। वे दलितों को मनुष्य नहीं समझते बल्कि पशुओं से भी गया गुजरा समझते थे। वे इन्सान को इन्सान नहीं समझते थे। उनका जातीय अहंकार इतना सिर चढ़कर बोलता था। वे अगर किसी भी दलित को कहीं जाते वक्त प्यास भी लग जाये तो उसे पानी नहीं देते थे। वह अपनी प्यास बुझाने के लिए ऐसे-ऐसे गंदे जगहों का पानी पीने के लिए विवश हो जाते थे। इस तरह की घटना भारतीय समाज में आम बात थी। स्वयं 'अपने-अपने पिंजरे' आत्मकथा के लेखक के साथ भी घटती है। लेखक अपने बड़े भाई के साथ जब अपनी बहन के ससुराल जा रहा था उस समय रास्ते में उसे जोर से प्यास लगी तो वे सवर्ण समुदाय के लोगों से पानी मांगा। लेखक के जाति के बारे में उन्हें जैसे ही पता चला कि वह चमार है तो उन सवर्णों का तेवर एकदम बदल गया। उन्होंने पानी देने से इनकार कर दिया। लेखक लिखता है, ''तो म्हारे घर आगे किसो खड़े हो? जाओ सिद्दे-सिद्दे, आगे चमारों के ही घर पड़ेंगे पैले।'' वे सांप की तरह फुफकारे थे।''11

इस तरह की घटनाएं दलितों के साथ घटती रही है, इसलिए वह समाज के प्रति नफरत और गुस्से का भाव रखता है। इस तरह की घटना स्वयं 'अपने-अपने पिंजरे' आत्मकथाकार के साथ भी घटी है जो स्वयं अपनी प्यास बुझाने के लिए ऐसे स्थानों का पानी पिया जहां पर गर्मियों से बचने के लिए जानवर बैठते थे, जिसमें बदबू या सड़ांध थी। आत्मकथाकार के अनुसार, ''एक जगह से चुल्लूभर पानी लेकर मुंह में डाला। पानी में बदबू थी। पानी का स्वाद भी कड़वा था। मुझे प्यास बुझानी थी। पानी कैसा ही हो आखिर पानी था। किसी के घर का पानी या जोहड़ का। मैंने चार-पांच चुल्लूभर पानी अपने गले में डाला। सामने भइया खड़ा था। उसकी आंखों में आंसू छलक आये थे।''12

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'अपने-अपने पिंजरे' आत्मकथा सिर्फ मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा नहीं है बल्कि पूरे दलित समाज की आत्मकथा है। आत्मकथाकार विभिन्न परिस्थितियों और घटनाओं का सामना करते हुए आगे बढ़ता है। जबकि यह भी सच है कि वह सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी शिकार होता है। इस प्रकार आत्मकथाकार अपने समाज का वास्तविक परिदृश्य को उभारने में सफल रहा है।

महाराजा अग्रसेन कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन्दर्भ सूची

1. मोहनदास नैमिशराय – अपने-अपने पिंजरे, आत्मकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 12
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ. 18
4. वही, पृ. 17
5. वही, पृ. 12
6. अभय कुमार दुबे (सं.) – समय चेतना / मार्च, 1996, पृ. 62
7. मोहनदास नैमिशराय – अपने-अपने पिंजरे, आत्मकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 31
8. वही, पृ. 27
9. वही, पृ. 76
10. वही, पृ. 76
11. वही, पृ. 68
12. वही, पृ. 69

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2456-0898

201

...न किशोर यादव* डॉ. चन्द्रशेखर राम**

'गबन' में चित्रित मध्यवर्गीय स्त्री

'गबन' प्रेमचन्द द्वारा रचित एक उपन्यास है। इस उपन्यास में नारी को केन्द्र में रखकर राष्ट्रीय ... में उनकी भूमिका को मुखरित किया गया है। यह ... वैयक्तिक और पारिवारिक घटना को सामाजिक ... प्रदान कर प्रेमचन्द ने क्रांतिकारी कार्य किया है। ... में जीवन को चित्रित किया गया है। जीवन के ... पर अपनी दृष्टि डालकर उसकी समग्र भूमिका ... रेखांकित करते हैं। कलाकार समाज के सत्य को ... करता है। महात्मा गांधी ने भी सत्य को कला ... साहित्य का मूल तत्व माना है। लुई फिशर लिखते ... महात्मा गांधी सत्य को कला और साहित्य का केन्द्रीयवर्ती ... मानते हैं। साहित्य की सोद्देश्यता पर बल देते हुए ... स्पष्ट कहा था कि साहित्यकार के लिए प्राप्त ... वाली पहली वस्तु सत्य है, उसके बाद शिव और ... स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा। सच्ची कला केवल रूप ... नहीं उसके परे जो है उसका भी विचार करती ...

... साहित्य में सत्य का उद्घाटन प्रेमचन्द ने किया है। ... ने सत्य को पहने की कोशिश की है। मनुष्य के ... को सही परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया है। उसके ... के दुःख-दर्द, आशा-निराशा, भाव-अभाव, रीति-नीति, ... का समग्र विश्लेषण किया है। समाज के भीतर ... समस्याओं पर प्रकाश डाला है। समाज के लोगों को ... कथा कहना ही उनका मूल सरोकार था। वे मानवीय ... के प्रति समर्पित रहे हैं। अपनी सामाजिक भूमिका ... पहचानते हैं। वह कला के लिए, साहित्य के लिए ... का बीज लोक जीवन से ही ग्रहण करते हैं। इसमें लोक कल्याण की भावना प्रमुख है।

प्रेमचन्द ने मन जीवन का चित्र खींचा है। उनके साहित्य में मनुष्य के विविध रूपों पर प्रकाश डाला गया है। "वे साहित्यकार को समाज का झंडा लेकर चलने वाला सिपाही मानते हैं और सुखी जिन्दगी के साथ ऊंची निगाह को उसके जीवन का लक्ष्य मानते हैं।"[2]

प्रेमचन्द यथार्थ जीवन की तस्वीर पेश करते हैं। शिवरानी देवी ने लिखा है, "लेखकीय सर्जना की पृष्ठभूमि यथार्थ जीवन के सत्य का साक्षात्कार होता है।"[3] प्रेमचन्द का कथा साहित्य का व्यापक फलक है। वह समाज का यथार्थ है। मुक्तिबोध ने लिखा है, "प्रेमचन्द का कथा साहित्य अपने आप को समाजोन्मुख बनाता है और आत्मोन्मुख भी। जब वह समाजोन्मुख बनाता है तब अपने समय और समाज की सत्यता की समीक्षा करने के लिए प्रेरित करता है और जब आत्मोन्मुख बनाता है तो आत्म-विश्लेषण और आत्मालोचन की भावना पैदा करता है।"[4]

प्रेमचन्द के केन्द्र में स्त्री-पुरुष दोनों ही पात्र हैं। दोनों के सहयोग के बिना समाज का पहिया रुक जाएगा, समाज को प्रगति के पथ पर तभी ले जाया जा सकता है जब दोनों सहयोग करते हों। दोनों की बराबरी की भागीदारी हो। वे उनके भीतर के चित्त की बात करते हैं। उनकी भाषा में कहते हैं। नये-नये दृष्टिकोण से करते हैं। उनके विवेचना का फलक विस्तृत है। वे एक ऐसा समाज चाहते हैं जहां समता हो, न्याय हो, जीवन हो, मानवता हो, करुणा हो, दया हो। वे सभी को साथ लेकर चलने में विश्वास करते हैं। प्रेमचन्द स्त्री के सभी रूपों को चित्रित करते हैं। वे मध्यवर्गीय स्त्री के स्वरूप को उभारकर रख दिया है।

202

उनके यहां स्त्री, मां, बेटी, पत्नी, सधवा और विधवा रूपों में चित्रित है। समाज के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। कई जगह वे मुखर है तो कई जगह मुखर नहीं है। परन्तु वे सतत संघर्षशील है। इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखकर जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

स्त्री चाहे किसी भी वर्ग की क्यों न हो, उनकी समस्याएं एक ही है। चाहे सवर्ण हो, चाहे दलित। दोनों के जीवन गाथा को प्रेमचन्द ने हमारे सामने खोलकर रख दिया है। वे समाज सापेक्ष है।

प्रेमचन्द के संपूर्ण लेखन में उनका वैचारिक क्रम स्पष्ट है। "वे विभिन्न समाज सुधार आन्दोलनों, आर्य समाज आन्दोलन, फिर गांधीवादी दर्शन के प्रभाव से होते हुए मार्क्सवादी चेतना के करीब पहुंचते है। जो उनकी दलित और शोषित जनता के प्रति गहन प्रतिबद्धता का प्रमाण है।"[5]

प्रेमचन्द के समक्ष स्त्री की पराधीनता मुख्य समस्या है। वे स्त्रियों को सजग और सफल बनाकर प्रगति के मार्ग पर ले जाना चाहते है। किसी भी समाज के समेकित विकास में स्त्रियों की महती भूमिका होती है। वे स्त्री की स्वाधीनता के पक्षधर हैं। वे स्त्री की स्वाधीनता को भारतीय समाज की स्वाधीनता से जोड़ते हैं। वे सामान्य मानवीय धरातल पर पात्रों का मनोविश्लेषण करते है। उनके हृदय के उद्भावों का चित्रण करते हैं। वे ग्रामीण और शहरी दोनों स्त्रियों की कथा कहते हैं। ग्रामीण परिवेश में स्त्री की आशा-निराशा, जीवन संघर्ष, पीड़ा, विवशता और उनकी तड़पन को सामान्य धरातल पर चित्रित करते हैं। वे अपनी भाषा में, अपने पात्रों का अपनी शर्तों पर स्वाधीन बनाना चाहते हैं। वे चेतना के द्वार को खोल देना चाहते हैं ताकि समाज का कल्याण हो सके। उनके संपूर्ण उपन्यासों में नारी की स्थिति प्रतिबिम्बित है। ये सभी स्त्रियां मध्यवर्गीय स्त्रियां हैं। जीवन के लिए संघर्षशील हैं। वे यातना सहती हैं पर मूल्यों से नहीं हटती।

समाज में उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। वे कितने सजग, कितने प्राणवान है, कितने जीवंत है, कितने राष्ट्रवादी हैं। इस सबका प्रमाण उनके कथा साहित्य में मिल जाता है। उनके स्त्री पात्रों में जिजीविषा है। वे जीना चाहती है। हर हालात से निपटने के लिए तत्पर रहती है। वे निरन्तर गतिशील हैं। वे पीछे हटना नहीं जानती। वे रास्ते नहीं बदलते हैं। वह सीधी-सरल सपाट मार्ग पर कभी चलता है तो कभी टेढ़े मार्गों से भी चलने से नहीं परहेज करते। निरन्तर चलते जाना ही उनका ध्येय है। प्रेमचन्द अपने पात्रों के मन की गुत्थी को खोलते है, "स्त्री का स्त्री होने के कारण पुरुष के हाथों जो शोषण होता है, जो लेखन में चित्रित होने पर स्त्री विमर्श कहलाता है, इसी समकाल की देन है। उसका चित्रण प्रेमचन्द के लेखन में सशक्त रूप से हो चुका है।"[6]

स्त्री सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक भूमिकाओं पर प्रकाश डालने की कोशिश है। उन्हें तो नजरअन्दाज किया जाता है। वे इसके खिलाफत करते हैं। राजनीति हो, समाजशास्त्र हो, विज्ञान हो, या कला हो, सभी जगहों पर स्त्री को मौलिक रूप से सम्मानित किया जाये। स्त्री को स्त्री होने की दोहरी सजा मिलती है। वह हर बार संघर्ष के धरातल पर उतरती है। व ऐलान करती है कि हमें रोकना चाहते हो तो रोक लो। हम अपनी मंजिल को प्राप्त करके ही दम लेंगे।

समाज ने जनवादी मूल्यों को भी प्रेमचन्द की दृष्टि है। वे समाज को ऐसा रूप देना चाहते हैं जहां कोई भेदभाव न हो। समानता पर आधारित हो। 1931 में प्रकाशित 'गबन' मध्यवर्गीय स्त्री की आकांक्षा और संघर्ष का जीवंत दस्तावेज है। नारी की पीड़ा, नारी का जीवन-चक्र और नारी के अदम्य साहस को मुखरित करना ही लेखक का उद्देश्य है। 'गबन' की नायिका जालपा है। वह मध्यवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। 'गबन' के संदर्भ 'कलम के सिपाही' में श्री अमृतराय लिखते हैं, "उपन्यास जिस रंग में शुरू हुआ था, शायद उस रंग में खत्म हो जाता लेकिन हो नहीं सका। उन्हीं दिनों मेरठ षड्यंत्र केस चल पड़ा। 'गबन' का उत्तरार्द्ध पूरे का पूरा क्रान्तिकारियों के खिलाफ पुलिस के झूठे केस की दास्तान है।"[7]

मध्यवर्ग की आकांक्षा को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द ने एक ऐसी स्त्री को लाकर खड़ा किया है जिसको बचपन से गहनों के प्रति लालसा की सीख दी गई है। उसे बचपन में ही दादी ने गहनों के प्रति सीख दी थी जिसके कारण उसकी आकांक्षा बन गई थी। स्त्री की आकांक्षा ही उसका आधार है। इसमें नारी के आभूषण प्रेम को दिखाया गया है। प्रेमचन्द सरल जीवन जीने की प्रेरणा देते है। लेखक के शब्दों में, "आभूषण प्रेम की कथा के कारण होने वाला आर्थिक, नैतिक, दैहिक, आत्मिक और धार्मिक पतन अकल्पनीय है।"[8] इसमें प्रेमचन्द ने स्त्री को गहनों के प्रति

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2456-0898

chandra shekhar Ram

बढ़ रही लालसा को उजागर किया है। "जालपा को गहनों से जितना प्रेम था उतना कदाचित संसार की और किसी वस्तु से न था और उसमें आश्चर्य की कौन-सी बात थी। जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती, तो गहनों की चर्चा करती।... तेरा दुल्हा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लायेगा। दुमक-दुमक कर चलेगी।"[9]

प्रारंभ में कथा के केन्द्र में आभूषण प्रेम है। उसके पीछे छिपे भावों को दिखाया गया है। इसमें सुखी हरियाली एवं सम्पूर्ण सौहार्दपूर्ण स्थितियों को सामने लाया गया है। लोकजीवन का सटीक रूप यहां है। इसके बाद बाजार का प्रवेश होता है। जालपा रतन के साथ बाजार जाती है। तांगे पर पैसे खर्च करती है। रामेश्वरी जब कहती है तो जालपा जवाब देती है, "मैं उन बहू-बेटियों में नहीं हूं। मेरा जिस वक्त जी चाहेगा जाऊंगी, जिस वक्त जी चाहेगा आऊंगी। मुझे किसी का डर नहीं है। जब यहां कोई मेरी बात नहीं पूछता, तो मैं किसी को अपना नहीं समझती। सारे दिन अनाथों की तरह पड़ी रहती हूं। कोई झांकता तक नहीं। मैं चिड़िया नहीं हूं, जिसका पिंजरा दाना-पानी रखकर बंद कर दिया जाये। मैं भी आदमी हूं।"[10]

यह स्त्री की स्वतंत्रता की पुकार है। वह भी समान जीवन जीना चाहती है। सबके साथ रहना चाहती है। वह अकेली नहीं रहना चाहती। जालपा के वाक्य, उसके साहस, उसकी भावना और उसकी अस्मिता को मुखरित करता है। जालपा का विवाह रमानाथ के साथ होता है। रमानाथ चुंगी में क्लर्क की नौकरी करता है। वह हर वक्त दिखावा करता है जिससे जालपा को ऐसा लगता है कि उसके पति के पास बहुत पैसा है। वह अपने आभूषण की लालसा को पूर्ण करना चाहती है। वह चंद्रहार खरीदना चाहती है। रमानाथ गबन करके रुपये लाता है। वही रुपये जाकर जालपा सराफ़ को दे देती है। जालपा को सत्य का आभास नहीं हो पाता है। पति कभी भी उसे अपनी स्थिति नहीं बताता। इसलिये जालपा रतन के साथ निरंतर बाजार जाती रहती है। फिजूलखर्ची करती है। जब सत्य का पता चलता है तो उसके भीतर का भाव जागृत हो उठता है। वह अपने पति को फटकारते हुए कहती है, "जब तुम्हारी आदमनी इतनी कम थी तो गहने लिये ही क्यों? मैंने तो कभी जिद्द नहीं की थी? और मान लो, मैं दो-चार बार कहती थी, तो तुम्हें समझबूझ कर काम करना चाहिए था। — आदमी सारी दुनिया से परदा रखता है लेकिन अपनी स्त्री से परदा नहीं रखता। तुम मुझसे परदा रखते हो। अगर मैं जानती कि तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है तो मुझे क्या ऐसा शौक चर्राया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियों को तांगे पर बैठा-बैठा कर सैर कराने ले जाती।"[11]

रमानाथ गबन में पकड़े जाते हैं। वह भागकर कलकत्ता चला जाता है। वहां देवीदीन के यहां शरण पाता है। रमानाथ कलकत्ता जाकर भी मानसिक अशांति में रहता है। वह हर वक्त पुलिस से डरता है। एक दिन वह सरकारी गवाह बन जाता है। वह मुक्ति संघर्ष के बंदियों के खिलाफ झूठी गवाही देता है। यहां रमानाथ के चरित्र के उस पक्ष को उजागर किया है जो स्वार्थवश झूठी गवाही देता है। अपने को बचाने के लिए दूसरे को फंसा देता है। उससे उसकी मानसिक दुर्बलता का पता चलता है।

रमानाथ के जाने के बाद जालपा का जीवन संघर्षमय हो जाता है। वह मेहनत करती है। वह मेहनत करके रुपये चुकाती है। वह पति को भी खोजने कलकत्ता पहुंच जाती है। वह एक ऐसी मध्यवर्गीय स्त्री है जो समय पड़ने पर हर स्थिति का मुकाबला करती है। वह कलकत्ता पहुंचकर रमानाथ को फटकारती है। जिससे रमानाथ जज के सामने सच बात कह देता है। सभी क्रांतिकारी रिहा हो जाते हैं। अन्त में जो जालपा के हृदय में, आत्मबल में और जो आदर्शों में परिवर्तन आया है वह राष्ट्रभक्त बनती नजर आती है। 'गबन' में प्रसिद्ध देशभक्त देवीदीन है। वह एक नेता से कहता है, "साहब सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है। तुम भी बड़ी-बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाये घूमोगे, इस सुराज से देश का कल्याण होगा? तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बंदों की जिंदगी भले आराम और ठाठ से गुजरे पर देश का कोई भला नहीं होगा।"[12]

प्रेमचन्द की दृष्टि राष्ट्र के भीतर घटित हो रहे सभी प्रक्रमों पर थी। वह स्त्री की आकांक्षा को चित्रित करते हुए अपनी राष्ट्रभक्ति को नहीं छिपाते हैं। वे जन-जन के प्रिय थे। जनता के साथ होकर, जनता की भाषा में, जनता की मुक्ति की गाथा लिख रहे थे। स्त्री की स्वतंत्रता की कहानी लिख रहे थे। उन्हें सशक्त बना रहे थे। उन्हें सशक्त बनाकर ही राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करा देते हैं। वह

204

अपने दम पर सभी संकटों से मुक्त होती है। रमानाथ को मुक्त करती है। दिनेश की मुक्ति में भी उसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रेमचन्द गरीबों के साथ, स्त्रियों के साथ डटकर खड़े रहते हैं। अंग्रेजों और उनके दलालों के खिलाफ निरन्तर संघर्षशील हैं। अपनी कलम से उनके चरित्र के एक-एक पक्ष को उजागर करते हैं। गरीबों के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। उनके शब्दों में, "गरीबों को लूटकर विलायत का घर भरना। इस एक टुकड़े में प्रेमचन्द ने अपने जमाने और आज के हिन्दुस्तान को बयां कर दी है।"[12]

जालपा को मध्यवर्गीय स्त्री का उत्कृष्ट रूप दिखाकर उसे नई ऊंचाई पर पहुंचा देते हैं। वह हर संकट को स्वयं झेलती है। वे अपना निर्णय स्वयं करते हैं। यह स्त्री का विकास पक्ष है। वे दिखा रहे हैं कि हिन्दुस्तान की स्त्रियां किसी से कमतर नहीं हैं। वे सबल हैं, संघर्षशील हैं, निर्णायक हैं। जीवन संघर्ष में अपनी नाव को अकेले खेने में सक्षम हैं। प्रेमचन्द जिन पात्रों का निर्माण किया है, उन सभी को स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ दिया है। उनकी भूमिका को रेखांकित किया है। देशकाल की परिस्थितियों के अनुरूप प्रेमचन्द पात्रों को निर्मित करते हैं। उन्हें आगे बढ़ाते हैं। उन्हें जिम्मेदारी देकर सहभागी बना देते हैं। यह प्रेमचन्द की रचना कर्म का वैशिष्ट्य है। वह पात्रों के भीतर प्रेम को बनाकर रखते हैं। कहीं भी इन्हें टूटने नहीं देते।

जालपा भारतीय नारी है। वह चेतना से युक्त है। उसमें हर परिस्थितियों से मुकाबला करने की क्षमता है। वह हार स्वीकार नहीं करती है। वह संघर्ष का रास्ता अपनाती है। अपना सब कुछ दांव पर लगाकर राष्ट्र के लिये समर्पित होती है। यहां स्त्री के अदम्य साहस और जिजीविषा को दर्शाया गया है। प्रेमचन्द मध्यवर्ग की सबलताओं से एवं दुर्बलताओं से पूरी तरह परिचित हैं। वे जालपा को ही नहीं रमानाथ को भी जीवन बचा देते हैं। वे पात्रों को उच्च धरातल पर ले जाते हैं। जालपा के व्यक्तित्व को पूरी तरह रूपान्तरित कर देते हैं। उसके व्यक्तित्व का नया पक्ष उभरकर सामने आता है। वह जीवन संग्राम की सफल योद्धा है। वह अपने संकटपूर्ण दिनों की व्यथा किसी से नहीं कहती है। वह पति को भी सावधान करती है। उसके चरित्र को भी बदलने में सक्षम है। उसका मार्ग त्याग का मार्ग है। वह चुनौतियों का मुकाबला करती है और भविष्य का मार्ग प्रशस्त करती है। उसकी दशा कहीं भी दयनीय नहीं है। उसकी जीवन की गति से ही उपन्यास में गति आ गई है।

जालपा देशभक्त स्त्री है। देश की सेवा करने का भाव उसमें विद्यमान है। देश के खिलाफ काम करने वालों के लिए उसके मन में घृणा का भाव है। वह उनसे टकराती है। रमानाथ जब मुखबिरी करता है उस समय जालपा का स्वाभिमान जाग जाता है। वह फूट पड़ती है। वह सही मार्ग पर रहती है तब कहती है, "तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो। जालपा उसे पैरों से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हाथों के स्पर्श से मेरी देह में छाले पड़ जायेंगे।"[13]

जालपा मध्यवर्गीय स्त्री का वह रूप है जो समय-समय पर अदम्य साहस और जिजीविषा का परिचय देती है। वह पति को सही मार्ग पर ले आती है। देशभक्त लोगों को मुक्ति दिलाती है। यह मध्यवर्गीय स्त्री के संघर्ष का परिणाम है। इस प्रकार गबन के केन्द्र में मध्यवर्गीय स्त्री की आकांक्षा है, जो अन्ततः राष्ट्रभक्ति की ओर जाती है। यह स्त्री के बढ़ते कदम का प्रमाण है।

*श्री वेंकटेश्वर कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
**महाराजा अग्रसेन कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन्दर्भ सूची

1. फिशर, लुई, द लाइट ऑफ महात्मा गांधी, पृ. 223
2. प्रेमचन्द, साहित्य का प्रयोजन, पृ. 18
3. देवी, शिवरानी, प्रेमचन्द : घर में, पृ. 141
4. अरविंदाक्षन, ए., प्रेमचन्द के आयाम, पृ. 36
5. सिंह, डॉ. कुंवरपाल, उत्तरार्द्ध-13, पृ. 11
6. अरविंदाक्षन, ए., प्रेमचन्द के आयाम, पृ. 238
7. प्रेमचन्द, गबन, परमानन्द श्रीवास्तव, भूमिका, पृ. 1
8. प्रेमचन्द, गबन, पृ. 66
9. वही, पृ. 45
10. वही, पृ. 48
11. वही, पृ. 141
12. शर्मा, डॉ. रामविलास, प्रेमचन्द और उनका युग, पृ. 66
13. वही, पृ. 66
14. वही, पृ. 65

chandrashekhar Ram

UGC Approved Journal No. 49321 Impact Factor : 2.591 ISSN : 0976-6650

Shodh Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal

Vol. 9, No. 8 Year - 9 April, 2018

Editor in Chief
Prof. Abhijeet Singh

Editor
Prof. Vashistha Anoop
Department of Hindi
Banaras Hindu University
Varanasi

Dr. K.V. Ramana Murthy
Associate Professor of Commerce
and Vice Principal
Vijayanagar College of Commerce
Hyderabad

Published by
SRIJAN SAMITI PUBLICATION
Varanasi

211

Impact Factor : [illegible]
ISSN [illegible]

➢	अंतर्राष्ट्रीय और ... [illegible] विकास [illegible] सुमन [illegible]	129-130
➢	[illegible] में [illegible] की भूमिका [illegible] हिंदी [illegible] संतोष कुमार	131-134
➢	[illegible] की [illegible] : [illegible] एवं [illegible] डॉ० पूनम [illegible]	135-141
➢	[illegible] का [illegible] स्वरूप प्रो. (डॉ.) अमर ज्योति सिंह, प्रो. (डॉ.) अमर बहादुर सिंह, डॉ. अमर नाथ सिंह	142-144
➢	[illegible] कौशल कुमार मिश्र	145-149
➢	भारत में जनजातियों की समस्याएं और उनके समाधान के प्रयास ([illegible] के विशेष सन्दर्भ में) अन्नपूर्णा झा	150-154
➢	भारतीय साहित्य और दलित स्त्री अस्मिता डॉ० बिन्दु चतुर्वेदी एवं [illegible] सुमित्रा चौहान	155-159
➢	इक्कीसवीं सदी के प्रमुख हिन्दी उपन्यासों में चित्रित आर्थिक समस्याएँ डॉ० अनिल कुमार	160-162
➢	वेदों में पर्यावरण संरक्षण : आधुनिक उपयोग धर्मेन्द्र चौबे	163-165
➢	वेदों का दर्शन मुकेश मिश्र	166-168
➢	मानस की प्रतीकात्मक व्याख्या और [illegible] डॉ० [illegible] सिंह	169-172
➢	भारतीय समाज में धार्मिक [illegible] की [illegible] में [illegible] भारतीय युवा आकाश कुमार सिंह	173-177
➢	वेदों का महत्व डॉ० बिन्दु	178-180
➢	[illegible] कृत उपन्यास 'छिन्नमस्ता' का समीक्षात्मक अनुशीलन आलोक कुमार	181-184
➢	जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में पारिवारिक जीवन और नारी का द्वंद्व डॉ० चन्द्रशेखर राम	185-188 ✓
➢	[illegible] शर्मा कृत उपन्यास '[illegible]' में स्त्री जीवन : एक दृष्टि डॉ० [illegible] चौधरी	189-192
➢	"[illegible]" : पर्यावरण संरक्षण के [illegible] में डॉ० निधि सिद्धार्थ	193-196
➢	कानपुर महानगर की [illegible] का सामाजिक-आर्थिक अध्ययन डॉ० [illegible] शुक्ल	197-201

Chandra Shekhar Ram

214

UGC Approved Journal No. 49321
Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal), Vol. 9, No. 8, April, 2018
Impact Factor : 2.591
ISSN : 0976-6650

जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में पारिवारिक जीवन और नारी का द्वंद्व

डॉ० चन्द्रशेखर राम
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, महाराजा अग्रसेन कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जब एक ही समय में व्यक्ति के अन्तर्मन में एक साथ दो विरोधी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं (जिनकी पूर्ति सम्भव न हो) तो तनाव और मानसिक विचलन की स्थिति होती है। यही द्वन्द्व है। यह द्वन्द्व जैनेन्द्र के उपन्यासों में कुछ ज्यादा ही उभर कर आया है, क्योंकि वे समाज और पात्रों के बीच ऐसी परिस्थितियों का जाल बिछा देते हैं, जिसमें पात्र कहीं न कहीं अवश्य उलझ जाता है। फिर भी इनके नारी पात्र इस द्वन्द्व के सर्वाधिक शिकार दिखाई पड़ती हैं। कारण कि इनके नारी चरित्रों में अहंवादिता विशेष रूप से विद्यमान है। परिणाम–स्वरूप वह आन्तरिक अभावों की तुष्टि के लिए सहज नारी भूमिका से पृथक होते हुए भी एक अलग रास्ता तय करती है। उसकी यह अहं और स्वच्छन्द प्रवृत्ति ही उसे वैवाहिक बन्धन तोड़ने के लिए उकसाती है। यद्यपि, 'त्यागपत्र' की मृणाल के वैवाहिक जीवन के बिखराव का कारण उसकी स्वच्छन्दता से अधिक उसके पति की शंकालु वृत्ति को रेखांकित किया गया है। मृणाल के पति–गृह–त्याग को उसकी मजबूरी करार दिया गया, फिर भी इस दोषारोपण से मृणाल भी नहीं बच सकती क्योंकि पति–पत्नी के बीच टकराव का जो कारण उभरता है, वह मृणाल का विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्ध था।

जैनेन्द्र ने औपन्यासिक चिन्तन के धरातल पर नारी–पुरुष की परस्परता में देह सम्बन्ध या काम सम्बन्ध को ज्यादा तरजीह दी है। इस विचारधारा के चलते उनके पात्रों द्वारा हर मर्यादा और आचरण संहिता को ठोकर लगाना आम बात है। इसलिए वे देह की आवश्यकता और उसकी पूर्ति में परस्पर आदान–प्रदान को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। तभी उनके नारी पात्र प्रेम और विवाह की सीमाओं में आबद्ध रहकर भी प्रेम सम्बन्धों को स्वीकार करते हैं। परन्तु 'त्यागपत्र' के मृणाल की स्थिति कुछ दूसरी दिशा का संकेत करती है। इसमें मृणाल न तो पूर्ण रूप से एक सफल प्रेमिका ही बन पाती है और न ही वैवाहिक जीवन में सामंजस्य बिठा पाती है।

'त्यागपत्र' में पति–पत्नी के रिश्तों में केवल दो ही जोड़े सामने आते हैं। एक तो प्रमोद के माता–पिता और दूसरे मृणाल और उसका पति। इन में प्रथम जोड़े के बीच कोई द्वन्द्व नहीं उभरता है। इतना अवश्य है कि दोनों में मतभेद है, परन्तु पति सामाजिक बन्धनों के डर से पत्नी के विचारों से समझौता कर लेता है। मृणाल और उसके पति के बीच का द्वन्द्व कुछ ज्यादा ही मुखर दिखाई पड़ता है। मृणाल केवल एक पति के साथ ही नहीं, बल्कि थोड़े–थोड़े समय के लिए दो–दो पतियों के साथ पत्नी की भूमिका में आती है, परन्तु वह दोनों जगह असफल और विद्रोही ही साबित होती है। दोनों जगह पर उसने पति को नहीं, बल्कि पति ने ही मृणाल को छोड़ दिया। इसके अलावा मृणाल की एक दूसरी भूमिका प्रेमिका की है, जिसमें भी वह सफल न हो सकी। उसके प्रेम पर सामाजिक मर्यादा अधिक हावी हो जाने से वह केवल खण्डित प्रेमिका से कुछ अधिक न बन सकी। वह सामाजिक और पारिवारिक दबाव में एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से विवाह तो कर लेती है, परन्तु उसके भीतर का मन अभी पूर्व प्रेम के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है। फिर भी बीच–बीच में सामाजिक बन्धन और वैवाहिक पवित्रता का बोध उसे भीतर तक हिला देता है। उसकी यह स्थिति उस समय उभरकर सामने आती है, जब प्रमोद उसके प्रेमी के पास से पत्र लेकर वापस आता है–

"प्रमोद, अब तू वहाँ कभी मत जाना। तुझको जवाब लाने को किसने कहा था? कभी किसी को कोई खत लाने की जरूरत नहीं है। समझा ?"

मैं कुछ भी नहीं समझा था।

वह बोली– "इतना अनसमझ क्यों है प्रमोद। तू नहीं जानता कि मेरी शादी हो गई है ?"[1]

मृणाल यहाँ बराबर अन्तर्द्वन्द्व का शिकार है। एक तरफ वह पूर्व प्रेमी की तरफ आकर्षित होती है तो दूसरी तरफ पत्नीत्व का निर्वाह करने के लिए भी कटिबद्ध दिखती है। एक सच्ची पतिव्रता के भावावेग में प्रमोद से यकायक कह पड़ती है–

"देख प्रमोद, शीला के भाई का कोई पैगाम आया कि मैं छत से गिरकर मर जाऊँगी। मुझे उन्होंने क्या समझा है ?"[2]

मृणाल का यही अन्तर्द्वन्द्व उसे प्रेमिका और पत्नी दोनों ही भूमिका से अलग ऐसी विद्रोही की भूमिका प्रदान करता है जिसे समाज द्वारा कोई नाम नहीं दिया जा सकता है। इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण उसका वैवाहिक जीवन नष्ट हो जाता है। मृणाल पति–पत्नी के बीच संबंधों और विचारों का खुलापन चाहती है। वह

chandra shekhar Ram

UGC Approved Journal No 49321
Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal), Vol. 9, No. 8, April, 2018
Impact Factor : 2.591
ISSN : 0976-6650

जितनी ही स्वच्छन्द जीवन-दर्शन की समर्थक है, ठीक उसके विपरीत उसका पहला पति उतना ही रूढ़िवादी विचारों और संकीर्ण मानसिकता का पोषक. जैसा कि उसके पति के कथन से स्पष्ट है- "आपने उन्हें समझा तो दिया ही होगा। जरा रोहत का ख्याल रखा करें। और दुनिया का भी लिहाज रखना चाहिए। आप जानिए, बहू-बेटियों की चलन की रीति-नीति हुआ करती है। अपने तो वही पुराने अक़ीदे हैं। अपना कुल-शील भला आता है, वह निभा तो फिर क्या रह गया। जरा ये बातें समझा देनी चाहिए।"[3]

मृणाल और उसके पति के बीच विचारों की इतनी बड़ी खाई सीधे-सीधे पारिवारिक विघटन की बुराइयों को उभार देती है। ये बुराइयाँ आज आधुनिक मध्यवर्गीय प्रत्येक परिवार के पति-पत्नी के रिश्तों के बीच दीमक का कार्य कर रही है। इसका कारण अनचाहे-अनजाने रिश्तों को एक साथ बलपूर्वक बाँधकर धर्म और समाज के नाम पर विवाह जैसे पवित्र बन्धन के साथ निरन्तर किया जाने वाला बलात्कार है। इसका प्रमुख प्रमाण न्यायालयों में भारी संख्या में आने वाले तलाक के मुकदमे हैं। इसी वैचारिक मतभेद के और अधिक गाढ़े होने और पत्नी मृणाल के विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त होने पर संकीर्ण मानसिकता वाले पति को और अधिक सह पाना दुष्कर लगा। इसका परिणाम मार-पीट कर मृणाल को घर से निकाल देने के रूप में सामने आया। यहीं पति-पत्नी के बीच द्वन्द्व का कारण सामाजिक से अधिक व्यक्तिगत है, क्योंकि दोनों अपने-अपने स्वाभाविक मार्ग को छोड़ कर समझौतावादी रुख नहीं अपनाना चाहते हैं। अतः एक दृष्टि में यह द्वन्द्व अति रूढ़िवादी और अति प्रगतिशीलता के बीच है। मध्य का मार्ग दोनों को मान्य नहीं।

पति-पत्नी के द्वन्द्व का एक रूप मृणाल और कोयटे वाले के बीच उभर कर सामने आता है। हालांकि इस रिश्ते को प्रेमी-प्रेमिका का भी रिश्ता कहा जा सकता है, परन्तु दोनों की यह निकटता पारस्परिक लगाव और प्रेम के कारण न होकर आवश्यकता और रूप लोभ के कारण थी। साथ ही मृणाल की भूमिका प्रेमिका की न होकर गृहिणी की अधिक दिखाई पड़ती है। अतः इसे पति-पत्नी का ही रिश्ता कहा जा सकता है। यद्यपि मृणाल ने इस रिश्ते को स्वेच्छा से स्वीकार किया, फिर भी यह ज्यादा देर तक टिकाऊ नहीं था, क्योंकि इसका आधार पारस्परिक वैचारिक सामंजस्य न होकर पति का रूप लोभीपन था। उसका मोहभंग एक न एक दिन होना ही था और वह हुआ भी। मृणाल को इस मोह भंग का आभास पहले से ही था- "जानती थी, इसलिए मैं उसे साथ ले आई। वह बेरुखी का भाव अब शुरू हो गया है। अब उसे चले ही जाना चाहिए। परिवार उसका वहाँ अकेला है। मुझे वह नहीं झेल सकता। मेरी कोशिश है कि वह मुझसे उकता जाय। अपनी अवस्था मैं जानती हूँ, पेट में बालक है, लेकिन ऐसी अवस्था में भी स्वार्थ की बात सोचना ठीक नहीं है। मैं उसे उसके परिवार में लौटाकर ही मानूंगी।"[4] फिर भी जो चीज इस रिश्ते को कुछ समय तक बरकरार रख सकी, वह मृणाल का अन्तर्द्वन्द्व था, जिससे वह पहले पति का घर छोड़ने के साथ तत्काल उचित निर्णय न ले सकी और एक शोषण से निकल कर दूसरी तरह के शोषण का शिकार हो गयी। इस शोषण से मुक्ति उसे तब मिली, जब उसने विवाह और परिवार बन्धन से अलग स्वतन्त्र मार्ग चुना।

जैनेन्द्र के उपन्यासों का विषय मुख्यतः पारिवारिक सम्बन्धों का विश्लेषण रहा है, जिसमें विशेषकर उन्होंने पति-पत्नी के सम्बन्ध-सूत्र के प्रत्येक आयाम को रेखांकित किया है। इस प्रक्रिया के चलते संतान और माता-पिता के बीच उभरने वाले द्वन्द्व भी खुलकर सामने आ गए हैं। आज के पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव का कारण माता-पिता और सन्तान के बीच निरन्तर बढ़ने वाला मतभेद है। यह मतभेद किसी विशेष परिवार तक सीमित नहीं है, बल्कि आज प्रायः सभी मध्यवर्गीय परिवारों की हालत एक जैसी है। इसका कारण समय के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन है, जिसके कारण नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का द्वन्द्व अवश्यंभावी है। संतानें जिस परिवेश में पल रही हैं, उसमें पुराने सामाजिक नियम और परंपराएं निरन्तर दम तोड़ती जा रही हैं। फिर भी माता-पिता द्वारा बार-बार उन पर थोपी जाने वाली सामाजिक मर्यादाओं से उनके प्रति संतानों की अनिच्छा और विद्रोह बढ़ता जाता है और एक समय ऐसा आता है, जब कि संतान अपने माता-पिता को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के सामने चुनौती बनकर खड़ा हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह विद्रोही संतान या तो समाज को तोड़ देती है या इस प्रक्रिया में खुद टूट जाती है। पर समाज की शक्ति अधिक होने और आत्मबल की कमी होने पर व्यक्ति के ही टूट जाने की संभावना ज्यादा बनी रहती है।

'त्यागपत्र' उपन्यास में दो विद्रोही चरित्र मृणाल और प्रमोद उभर कर सामने आते हैं। इनमें भी मृणाल का विद्रोह अधिक मात्रा में उभर कर सामने आता है।

यद्यपि माँ-बाप के व्यवहार की असमानता, निर्भरता तथा भय के संघर्ष के कारण उपजने वाले पारिवारिक द्वन्द्व का रूप मृणाल में नहीं दिखाई देता है। प्रारम्भ में माता-पिता की मृत्यु के बाद मृणाल के

Chandra Shekha Ram

216

UGC Approved Journal No. 49321
Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal), Vol 9, No 8, April, 2018
Impact Factor : 2.591
ISSN : 0976-6650

भाई ने मृणाल को खूब स्वतन्त्रता दी। अतः इस समय द्वन्द्व उपजने का औचित्य ही नहीं था, परन्तु ज्यों-ज्यों मृणाल का क्रिया-कलाप प्रेम के क्षेत्र में बढ़ने लगता है, त्यों-त्यों पारिवारिक दमन प्रारम्भ हो जाता है।

मृणाल की संरक्षिका उसकी भाभी पुरानी विचारधारा की नारी है। अतः उन्हें मृणाल का इस तरह स्वच्छन्द रूप से विचरण करना मान्य नहीं। वे मृणाल को परिवार और सामाजिक मर्यादाओं की कसौटी पर कसने का बराबर प्रयत्न करती है। इस प्रक्रिया में यदि आवश्यकता पड़ी तो वे उसे प्रत्यक्ष प्रताड़ित करने में भी नहीं झिझकती थी। जैसा कि मृणाल के कथन से स्पष्ट है—

'पिता का स्नेह बिगाड़ न दे, इस बात का मेरी माता को खास ख्याल रहता था। वह अपने अनुशासन में सावधान थी। मेरी बुआ को प्रेम करती थी, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता। पर आर्य गृहिणी का जो उनके मन में आदर्श था, मेरी बुआ को वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थी।"[8]

मृणाल और मृणाल की भाभी के बीच यह द्वन्द्व यहीं खत्म नहीं हो जाता, बल्कि वे मृणाल का विवाह भी उसकी इच्छा के विरुद्ध एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से करा देती है। साथ ही मृणाल के ससुराल चली जाने पर वे उसकी खबर तक नहीं लेती थी। मृणाल की भाभी अपने पति की इज्जत और मर्यादा के प्रति सचेत होकर मृणाल को बाल्यावस्था से ही अनुशासन में रखना चाहती थी। उनको डर था कि मृणाल कहीं अपने भैया की इज्जत को बिगाड़ न दे। इसलिए वे बराबर इस बात के लिए सचेष्ट रहती थी और मृणाल पर नजर रखती थी। अब प्रश्न उठता है कि इस प्रकार का कड़ा अनुशासन क्या व्यक्ति और समाज के लिए आवश्यक है? इसके लिए ठीक-ठीक दो टूक जवाब देना मुश्किल है परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि कठोर अनुशासन में व्यक्ति के सामाजिक बनाने के बजाय विद्रोही बनने की संभावना अधिक रहती है, जिसका उदाहरण 'त्यागपत्र' की मृणाल है।

यद्यपि मृणाल और उसके भैया भाभी के बीच का सम्बन्ध माता-पिता और सन्तान का नहीं है, फिर भी मृणाल के माँ-बाप न होने की वजह से दोनों की संरक्षक की भूमिका में होने के कारण उसके भैया-भाभी माता-पिता की ही भूमिका अदा करते हैं।

मृणाल और उसके भैया के बीच में भी द्वन्द्व मुख्यतः मृणाल के प्रेम सम्बन्धों को लेकर है। जिस व्यक्ति ने अपनी बहन को बचपन से ही अगाध स्नेह और स्वतन्त्रता दी, वही आज इतना निष्ठुर हो गया कि परिवार की झूठी मर्यादा के लिए अपने बहन के प्रेम की बलि चढ़ा दी। यह द्वन्द्व सामाजिक मर्यादाओं के प्रति उत्कट लगाव के कारण उत्पन्न हुआ क्योंकि इसी अंधी सामाजिक मर्यादा ने उसे अपनी बहन की सुख-सुविधाओं का ख्याल तक नहीं आने दिया। परिणामस्वरूप मृणाल के स्वच्छन्द प्रेम से खीझकर उन्होंने मृणाल का विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ कर दिया। मृणाल के भाई का यह अन्तर्द्वन्द्व बाह्य नहीं है, बल्कि वह मृणाल की स्थिति के कारण अन्तर्द्वन्द्व में पला है। एक तरफ वह अपनी बहन को अत्यधिक प्यार करता है और दूसरी तरह लोकलाज के डर से उसे जबरन ससुराल भेज देता है। यद्यपि उसने अपनी पत्नी की तरह मार-पीट का सहारा नहीं लिया, फिर भी कूटनीति के द्वारा अपनी बहन की इच्छाओं का भरपूर दमन किया। वह मृणाल को समझाते हुए कहता है– "सुनो मृणाल, अभी भेजने की राय नहीं थी। तुम्हारी हालत नाजुक है। लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ?"[9]

एक तरफ वह उससे सहानुभूति दिखाता है और वहीं दूसरी तरफ समझाने-बुझाने का रास्ता
अपनाता है। परन्तु दोनों ही रास्ते अन्ततः मृणाल की इच्छाओं के दमन के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं–
"पर पति के घर के अलावा स्त्री को और क्या आसरा है? यह झूठ नहीं है मृणाल कि पत्नी का धर्म
पति है। घर पति-गृह है। उसका धर्म, कर्म आरैर उसका मोक्ष भी वही है। समझती तो हो बेटा।"
इस प्रकार दोहरी दमनात्मक नीति से मृणाल विद्रोह कर बैठती है और पति का गृह छोड़ने के बाद
लाख कठिनाइयाँ झेल लेती है परन्तु अपने मायके वापस नहीं आती है। इस घोर निराशा और लाचारी की
स्थिति में प्रमोद ही उसका एक अपना सगा संबंधी है जिसे वह बहुत प्यार करती है। फिर भी वह घर चलने
के प्रमोद के प्रस्ताव को ठुकरा देती है।
माता-पिता और सन्तान के बीच द्वन्द्व का दूसरा सूत्र प्रमोद है। प्रमोद और उसके पिता के बीच
किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं दिखाई पड़ता है। परन्तु प्रमोद और उसकी माँ के बीच यह द्वन्द्व अधिक उभरकर
सामने आया है। फिर भी उसका विद्रोह उतना नहीं उभर सका जितना होना चाहिए था। कारण, मृणाल की
विद्रोह चेतना की अधिक तीव्रता है। प्रमोद का अपनी माँ और पिता के प्रति विद्रोह तब दिखाई पड़ता है जब
वह बुआ को ससुराल जाने से रोकता है। वह अपने पिता और माता की इच्छा के विरुद्ध मृणाल का सदैव
साथ देता है और बुआ को ससुराल जाने से रोकता है–

UGC Approved Journal No. 49321
Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Refereed Research Journal), Vol 9, No. 6, April 2018
Impact Factor : (2.59)
ISSN : 0976-6650

"मैंने अपनी समझ में जाने क्या कुछ समझकर कहा– "तो बुआ यहीं जाने की कोई जरूरत नहीं–
मैं नहीं जाने दूंगा।"

बुआ ने कहा – "भला किस जोर से नहीं जाने देगा ?"

"बस कह दिया, नहीं जाने दूंगा।"[4]

प्रमोद के इस प्रकार का विद्रोह केवल 'स्व' के प्रति नहीं है, बल्कि 'पर' यानी अपनी बुआ के प्रति
है। उसकी बुआ के ऊपर किया जाने वाला अत्याचार ही प्रमोद और उसकी माँ के बीच द्वन्द्व का कारण
रहा। वह अपनी माँ द्वारा लाख मना किये जाने पर भी अपनी बुआ से मिलने जाता है। वह माँ की इच्छाओं
के विरुद्ध बार–बार बुआ को घर आने का आग्रह करता है—

"मैंने कहा– तुम्हें पता है, मैं बीस बरस का हो रहा हूँ, बालिग हूँ। घर का मालिक हूँ। माँ है, तो
मेरी है। मैं तुम्हें यहाँ कैसे रहने दूँगा ?"

बुआ ने पूछा– "तो तू जरूर ले चलेगा ?"

"जरूर ले चलूँगा।"[5]

प्रमोद की माँ और उसकी बुआ के बीच निरन्तर बढ़ने वाले द्वन्द्व ने केवल उन दोनों के ही जीवन
में कटुता नहीं घोली बल्कि उसका परोक्ष प्रभाव प्रमोद के सम्पूर्ण जीवन पर पड़ा जिसने प्रमोद के जीवन में
भयंकर विष घोल दिया। परिणामस्वरूप प्रमोद जीवन भर अविवाहित रहने का संकल्प ले लेता है। इसी द्वन्द्व
ने प्रमोद के जीवन में अन्तर्द्वन्द्व का समावेश कर दिया। वह बुआ की तरफ तो बढ़ता है परन्तु माँ का पूर्णतः
साथ नहीं छोड़ पाता। अन्ततः उसने जज के पद से त्यागपत्र दे दिया। उसके अपने शब्दों में–

"इसलिए आज जो असली तराजू है उसमें हल्का तुल रहा हूँ। आज इस सारी वकालत के पैसे
और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठकर सोचता हूँ कि क्यों मुझसे तनिक सरल सामान्य नहीं बन गया ?
इस सब का अब मैं क्या करूँ जबकि समय रहते प्रेम के प्रतिदान से मैं चूक गया। यह सब मैल है जो मैंने
बटोरा है। मैल की मेरी आत्मा की ज्योति को ढंक रहा है। मैं सब यह नहीं चाहता हूँ।"[10]

इस प्रकार 'त्यागपत्र' उपन्यास में मृणाल और प्रमोद का अपने संरक्षक एवं माता–पिता के बीच
उभरने वाला द्वन्द्व आज की पीढ़ी का द्वन्द्व है। नयी पीढ़ी पुरानी घिसी–पिटी परम्पराओं के बोझ को ढोना
नहीं चाहती, बल्कि जो मान्यताएँ उसके मार्ग में रोड़ा हैं, उन्हें झटककर एक पूर्ण मानव की भूमिका अदा
करना चाहती है।

निष्कर्षतः जैनेन्द्र के उपन्यासों में उनके पात्र अन्तर्द्वन्द्व की विभिन्न स्थितियों में जीवन जीने के लिए
अभिशप्त दिखते हैं। यही अन्तर्द्वन्द्व 'त्यागपत्र' उपन्यास के विभिन्न पात्रों पर हावी रहा। मृणाल का अन्तर्द्वन्द्व
आदर्श और यथार्थ का है, विवाह और प्रेम का है, स्वतंत्रता और बन्धन का है, परम्परा और प्रगतिशीलता का
है, व्यक्ति और समाज का है, पुरुष और नारी–अस्मिता का है। प्रारम्भ में उस पर आदर्श हावी रहा परन्तु
अन्ततः परिस्थितिवश उसे यथार्थ स्वीकार करना पड़ा। प्रमोद का अन्तर्द्वन्द्व माँ और बुआ के रिश्ते एवं मर्यादा
और वास्तविकता का है। मृणाल के भाई का अन्तर्द्वन्द्व बहन के प्रति प्रेम और सामाजिक बन्धन का है। प्रमोद
की माँ का अन्तर्द्वन्द्व नारी सुलभ ईर्ष्या और संरक्षक भाव का है। इन पात्रों के साथ–साथ स्वयं जैनेन्द्र का भी
अन्तर्द्वन्द्व उभर आता है। वे विवाह और प्रेम के बीच उलझे दिखाई पड़ते हैं। अन्ततः दोनों में से वे किसी
एक को पूर्णता तक नहीं पहुँचा पाते हैं।

संदर्भ :

1. जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र, पृ० 21
2. वही, पृ० 22
3. वही, पृ० 35
4. वही, पृ० 57–58
5. वही, पृ० 10
6. वही, पृ० 29
7. वही, पृ० 28
8. वही, पृ० 26
9. वही, पृ० 49
10. वही, पृ० 83

MANAVIKI

An International Peer Reviewed and Refereed Research
Journal of Humanities & Social Sciences

UGC List No-: 42515 IIJF Impact Factor-: 3.097

Vol. IX No. II Issue III July-December 2018

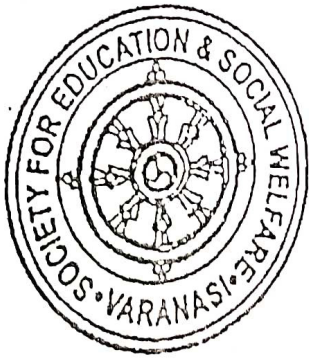

A REFEREED JOURNAL OF THE SOCIETY FOR
EDUCATION & SOCIAL WELFARE, VARANASI – 221005
(INDIA)

Published by
Society for Education & Social Welfare
Varanasi – 221005
INDIA

IN ASSOCIATION WITH
K.R. PUBLISHERS AND DISTRIBUTORS
Baba Shopping Complex, Lanka, Varanasi –05

ISSN 0975-7880
© Publisher
December 2018
Chief Editor: Ravindra N. Singh
Editors: Vikas Kr. Singh, Niraj Kr. Mishra, Amit Kr. Upadhyay
Associate Editors: Ajit Kr. Choudhary, Amit Ranjan

For subscription/ contribution/ advertisement/book reviews contact/ write to

The Editors, Manaviki
Department of A.I.H.C. & Archaeology
Faculty of Arts, Banaras Hindu University
E-mail: manavikiresearchjournal@gmail.com
Mob. 09415682014, 9621429385

Printed by
DURGA PRINTING PRESS,
Varanasi

Articles in this journal do not reflect the view of policies of the Editors or the Publisher. Respective authors are responsible for the originality of their view/opinions expressed in their articles.

Hayat Ahamad

63. संशयतदुच्छेदवाद में सृष्टिप्रक्रिया विचार
डॉ. अर्चना तिवारी 273-274

64. अवधी लोकगीतों में रामकथा की परम्परा
डॉ. अमित कुमार मिश्रा 275-277

65. Body as an Integral part in Kaushik Ganguly's filmic text *Nagarkirtan(2017)* :A Critical study through Queer Politics and Social Change. 278-282
Mintu Paul

66. हिन्दी का जातीय उपन्यास
डॉ. विशाल विक्रम सिंह 283-287

67. Urbanisation, Urban Governance and Environment
Dr.Giriraj Singh Chauhan 288-293

68. A comparative study on level of agression among the male University players of hockey, football and Volleyball 294-298
Virender Singh Jaggi

69. सूर्य पूजा एवं उनकी प्राचीन मूर्तियां
डॉ0 सन्तोष कुमार 299-304

70. Baluchistan's struggled History for Independent Existence :A Critical Observation 301-304
Dr. Sutapa Das

71. जन जागरण और गाँधी जी का सूक्ति साहित्य
डॉक्टर संगीता गुप्ता 305-312

72. A Comparative Study of Explosive Strength of Graduate Level Basketball and Handball Women Players 313-316
Dr. Seema Singh

73. A Study Of Attitude Of IX Standard Students Towards Rights Of Children 317-323
Dr. Keerti Singh

74. Trends in development and utilization of sericulture resources for diversification and value addition 324-326
Dr. Bhupendra Prasad Singh

75. मोहन राकेश के नाटकों के दीर्घ संवादों का विश्लेषणात्मक अनुशीलन 327-331
चन्द्रप्रकाश मिश्र

76. प्रसाद का समय और रचना–दृष्टि 332-336
डॉ श्रुति आनंद

77. 'उत्तरप्रियदर्शी' और उसकी प्रासंगिकता 337-341
डॉ राजहंस कुमार

78. Impact of MGNREGA on rural women labourers 342-346
Dr. Amrapali Trivedi

'उत्तरप्रियदर्शी' और उसकी प्रासंगिकता

डॉ राजहंस कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय

अज्ञेय हिंदी साहित्य में आधुनिक भाव बोध को नेतृत्व देने वाले बड़े रचनाकार हैं। उनकी सर्जनात्मकता बड़े जीवनवृत से सम्बंधित रही है। उनके रचना की प्रविधि न सिर्फ परम्परा को पोषित संशोधित करती है बल्कि वर्तमान और भविष्य को भी राह दिखाती है। उन्होंने (कविता कहानी,उपन्यास,पत्रकारिता ,निबंध,डायरी ,आलोचना,नाटक)लगभग सारी विधाओं में अपनी लेखनी चलायी है। उनके इतने विस्तृत रचना संसार के पीछे एक ओर उनकी अपनी यायावरी से प्राप्त जीवनानुभव है तो दूसरी ओर उनकी बहुपठनीयता।इसलिए उनकी रचनाओं में भिन्न–भिन्न विचार,संस्कृति एवं साहित्य का प्रभाव देखने को मिलता है। ध्यातव्य है कि ये प्रभाव उनकी रचनाओं में प्रभाव बन कर आया है नकल नहीं। पश्चिमी विचारक फ्रायड हो या इलियट ,जापानी चिन्तक एडलर जुंग हों या फिर आधुनिक भारतीय योगी अरविन्द ,चाहे जापानी जेन बुद्धिज्म हो या भारतीय ध्यानचन्द्र सम्प्रदाय सभी विचार उनकी रचनात्मकता में भारतीय रूप ग्रहण कर लेता है।

अज्ञेय की इस भारतीय सर्जनात्मकता का प्रमाण एक ओर साहित्य सृजन है तो दूसरी ओर साहित्य एवं समाज सम्बंधित उनके गंभीर चिंतन सूत्र। उनके यहाँ ये दोनों ही द्वंद्वात्मक अर्थ में एक दूसरे को विकसित करते चलते है। उनके कुछ प्रमुख चिंतन विंदु हैं–व्यक्ति एवं समाज भाषा सम्बंधित विचार परंपरा और आधुनिकता।अज्ञेय के अनुसार व्यक्ति एवं समाज में परस्पर निर्भरता है किन्तु व्यक्ति ही समाज की प्राथमिक इकाई है। व्यक्ति सृजित मूल्यों को ही काटछांट कर समाज आचरण योग्य बनाता है। ये मूल्य कभी–कभी पुराने पड़ जाते है तो व्यक्ति को इन्हें तोड़कर नए मूल्यों की तलाश करनी होती है। अतः अज्ञेय व्यक्ति एवं समाज की परस्पर निर्भरता मानते हुए भी व्यक्ति को ही प्रधानता देते हैं। अज्ञेय में भाषा सम्बन्धी चिन्तन दो रूपों में देखा जा सकता है।एक तो उनके भाषा सम्बन्धी वैचारिक निबंधों में , दूसरे साहित्य में प्रयुक्त उनके भाषिक उपकरणों के रूप में। अज्ञेय के अनुसार भाषा किसी भी संस्कृति की बुनियाद होती है उसकी तीन शक्तियां होती हैं –यथार्थ की अभिव्यक्ति ,अस्मिता की पहचान एवं मूल्यबोध।अज्ञेय भाषा के अवमूल्यन को आधुनिक युग की एक गंभीर समस्या मानते हैं एवं उसकी शुरुआत मीडिया से मानते हैं।

इसी तरह काव्य में अज्ञेय ,अर्थपूर्ण शब्द को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। साहित्य में फैली शब्दों की असम्प्रेषणीयता ही उन्हें शब्द से मौन की ओर ले जाती है। उनके अनुसार कविता शब्दों में उतनी नहीं होती जितनी शब्दों के बीच के विराम में होती है। सम्प्रेषणीयता की तलाश के प्रयोजन में ही अज्ञेय के काव्य में प्रतीक एवं बिम्ब बिलकुल नूतन रूप में आये हैं।मछली सागर ,बूँद ,दीपक महावृक्ष ,सांप जैसे अनेक पारम्परिक प्रतीकों में उन्होंने नवीन अर्थ भरा है। गहरी अनुभूति एवं सूक्ष्म अंतर्दृष्टि से जुड़े होने के कारण ही उनके बिम्ब,भावों को मूर्त करने में अत्यंत सक्षम हैं। मिथक अज्ञेय काव्य का प्रमुख भाषिक उपकरण रहा है। उनके अनुसार यह एक रहस्यमय शक्ति है। सवत्सा कामधेनु ,जराव्याध,कृष्ण जैसे अनेक मिथक उनकी भाषाई सम्प्रेषणीयता को सशक्त करते हैं।

अज्ञेय ने आधुनिकता को परम्परा से जोड़कर देखा है। उनके अनुसार आधुनिकता न तो पश्चिम की नकल है न ही यंत्रीकरण।वह व्यक्ति संवेदन का संस्कार है।व्यक्ति संवेदन का संस्कार अपनी परम्परा से कटकर नहीं हो सकता है।किन्तु परम्परा में रूढ़ हो चुकी चीजों को त्याग देना ही श्रेयस्कर है।अतः अज्ञेय समाज एवं साहित्य दोनों क्षेत्रों में परम्परा से कटी आधुनिकता को आधुनिकता नहीं मानते।

चिन्तक एवं रचनाकार के रूप में अज्ञेय पर जितनी भी चर्चा की जाये या हुई है कम है। सैकड़ों संगोष्ठियाँ एवं अज्ञेय पर किये गए शोध कार्य भारतीय अकादमिक जगत में इस बात को स्वतः प्रमाणित करते है।परन्तु नाटककार अज्ञेय साहित्य जगत के लिए अनजान रहे है उनकी विस्तृत रचनात्मकता के संसार का यह कोना अधिकांश आलोचकों पाठकों व छात्रों के लिए अनछुआ है। बहुत कम लोग जानते हैं कि अज्ञेय ने एक विलक्षण गीतिनाट्य की रचना भी की है सम्राट अशोक के उत्तर जीवन पर लिखा गया यह नाटक है 'उत्तर प्रियदर्शी'। अज्ञेय रचित यह गीतिनाट्य हिंदी गीति नाट्य परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है।इतने विस्तृत रचना संसार के बावजूद यह उनके जीवन की एक मात्र नाट्यकृति है। य। पि उनके नजदीकी मित्रों के अनुसार उन्होंने 'फ्रांसिस डे' पर एक गीति नाट्य लिखा था एवं कबीर पर भी एक गीति नाट्य लिखने वाले थे।यह महज संयोग की बात है कि उनकी पहली कृति रचना के रूप में

ISSN 0975-8690 UGC List No 44958 Impact Factor 3.214

THE ETERNITY

An International Multidisciplinary Peer Reviewed and Refereed Research Journal

Volume X No. 1-2 January-June [illegible]

Patron
Prof. Dilip K. Dureha

Editor-in-chief
Dr. Yatendra K. Singh

Editors
Prof. Surendra Singh
Dr. Priyanka Singh
Dr. Vinit [illegible]

Associate Editor
Priti Singh

THE ETERNITY

द इटर्निटी

An International Multidisciplinary Peer Reviewed and Refereed Research Journal

UGC List No 44958 ISSN : 0975-8690 Impact Factor 3.214

Vol. X No. 1-2 January-June 2019

Content

- **Determinants and systems of voting in Indian politics** 1-6
  Manish Kumar
- प्राचीन भारत में बुद्ध कालीन शिक्षण प्रणाली 7-11
  कुमारी सोनम
- विनानिपातपदसमभिव्याहारे द्वितीयार्थविचारः 12-15
  डा.मनोज कुमार मिश्रा
- शिवानी के उपन्यासों में भाषा शैली एवं शिल्प विधान 16-22
  पूजा सोनी
- पटना शहरी क्षेत्र में भू स्थानिक तकनीकों का उपयोग करते हुए शहरी फैलाव का आंकलन 23-29
  अल्पना कुमारी
- तर्कसंग्रहदृष्टया हेत्वाभासस्वरुपविचारः 30-34
  रामचन्द्र
- **Competitiveness of Nepal's Foreign Trade: A Study of Revealed Comparative Advantage** 35-43
  Rohit Kumar Singh
- 'इन्द्रिय' सर्वास्तित्ववाद के विशेष संदर्भ में 44-48
  डॉ0 रवि रंजन द्विवेदी
- **The Study of Philosophical and Educational Thought of Maharishi Aurobindo Ghosh And Swami Vivekananda in present context** 49-58
  Dr. Om Singh
- एक विलक्षण भारतीय बौद्धिक : कृष्णदत्त पालीवाल (आलोचना दृष्टि के सन्दर्भ में) 59-63
  डॉ. राजहंस कुमार
- राष्ट्रीय एकता का सृजनात्मक आयाम 64-68
  डॉ. श्रुति आनंद सिंह

एक विलक्षण भारतीय बौद्धिक : कृष्णदत्त पालीवाल (आलोचना दृष्टि के सन्दर्भ में)

डॉ. राजहंस कुमार
महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दिल्ली, विश्वविद्यालय

प्रोफेसर कृष्णदत्त पालीवाल अब पार्थिव रूप में नहीं रहे। कुछ वर्ष पहले फरवरी की एक गुनगुनी सुबह सूर्य की प्रथम रश्मि पर सवार हो उनका प्रयाण हुआ। पर उनका स्नेह–स्पर्श, उनकी छवि–छुअन साहित्य समाज के लिए आज भी पूरी गर्माहट व पार्थिवता के साथ मौजूद है।

प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल अक्सर अपने वक्तव्यों में, व्यक्तिगत वाद–संवाद में मौके – बे मौके भारतेंदु की एक पंक्ति उल्लिखित कर जाते थे कि हरिचंद जू है जग की यह रीति विदा के समय सब कंठ लगावत। 'विदा होते' को सारी दुनिया गले लगाती है। भारतीय अनुभव परम्परा के मर्म में लिपटी यह पंक्ति व्यंग्य सन्दर्भों में नाटक के तीर की तरह घातक है। अर्थ ना सिर्फ जग के लिए उपहास लेकर आता है बल्कि जाने वाले पर भी निर्मम हो उठता है। जो लोग कृष्णदत्त पालीवाल को जानते हैं वो आज समझ सकते कि पालीवाल जी जैसे व्यक्ति साहित्य–समाज की किन विद्रूपताओं, दरिद्रताओं को ढंकने के लिए भारतेंदु की इन पंक्तियों का स्मरण करते करवाते थे। इसलिए आवश्यक है कि प्रो. पालीवाल को पढ़ने–गुनने, सुनने–सुनाने वाले एवं स्मरण करने वाले लोगों के नेपथ्य में यह पंक्ति अवश्य बजे और मुनासिब होगा कि प्रो. पालीवाल को जग की रीत के तहत नहीं, एक बौद्धिक अतीत के तहत नहीं, बल्कि इक्कीसवीं सदी की विस्मृति के बियाबान में भटकती भारतीय बौद्धिकता और आलोचना की उम्मीद के रूप में स्मरण किया जाए।

विहंगम आलोच्य दृष्टि से देखा जाए तो प्रो. कृष्ण दत्त पालीवाल की पुस्तकों की फेहरिस्त जितनी लम्बी है उतनी ही उनके साहित्यिक सक्रियता की। वे निरंतर लगभग चार दशकों तक विविध रचनाकारों पर विचार विमर्श में संलग्न रहे। देश–विदेश में भारत से जापान तक पठन–पाठन के साथ महादेवी, सर्वेश्वर, भवानीप्रसाद मिश्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, गिरिजा कुमार माथुर, मनोहर श्याम जोशी जैसे रचनाकारों के टेक्स्ट से संवाद किया। भक्तिकाल से लेकर उत्तर आधुनिक समय की रचनाओं एवं हलचलों पर लेखन–कार्य और भारतीय साहित्य के इतिहास लेखन में साहित्य अकादमी को दिया गया उनका सहयोग हिन्दी जगत के लिए अविस्मरणीय है। इसी तरह डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित भारतीय साहित्य ने नवजागरण, स्वच्छन्दतावाद एवं राष्ट्रीय कविता पर रखे गए उनके विचार महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं। पर इन सारी लेखन फेहिरतों से गुजरते हुए ना तो प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल की बौद्धिक प्रतिभा को समझा जा सकता है, न ही उनके आलोचकीय कार्यों को आँका जा सकता है।

दरअसल, प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल को समझने आंकने के लिए प्राथमिक तौर पर दो बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रथमतः उनमें मौजूद गहरा

July. 2018

भारत विभाजन

ISSN : 2320-5733

त्रैमासिक, जुलाई-सितम्बर 2018, 25 रुपये मात्र

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

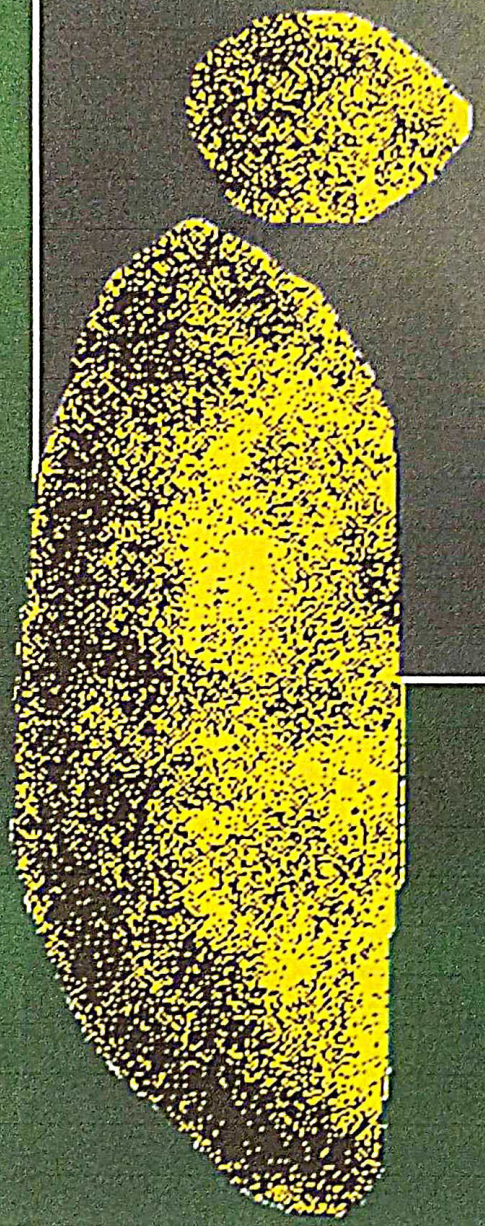

आलेख

भारत-विभाजन, साम्प्रदायिकता की समस्या और तमस

– डॉ. आभा शर्मा

भारत विभाजन देश कीसबसे त्रासद घटनाओं में गिना जाता है.विभाजन के समय देश में व्यापक स्तर पर साम्प्रदायिक दंगे हुए, लाखों निर्दोष लोगों की जानें गयीं और उस बंटवारे के कारण अपनी ज़मीन, परिवेश और जगह से ही पलायन को मजबूर होना पड़ा, जिसमें वे पैदा हुए थे. स्वाधीनताप्राप्ति के एक लम्बे संघर्ष के पश्चात् देश को गुलामी और साम्राज्यवाद से मुक्ति तो मिली. पर भारतीय जनता को उसके लिए भारी कीमत भी चुकानी पड़ी. भारत की अनेक भाषाओं के रचनाकारों ने इस त्रासदी का विस्तृत वर्णन किया है. साहित्य की लगभग सभी विधाओं में देश के विभाजन और साम्प्रदायिकता का चित्रण मिलता है. यद्यपि हिंदी-भाषी क्षेत्र के लोगों ने विभाजन और विस्थापन की वैसी त्रासदी का सामना नहीं किया जैसा कि पंजाब और बंगाल की जनता को करना पड़ा. परिणामतः पंजाबी और बंगला में हिंदी की अपेक्षा बहुत अधिक साहित्य उपलब्ध है जो देश के विभाजन और साम्प्रदातिकता से सम्बंधित है.हिंदीमें भी अनेक उपन्यास लिखे गए हैं,जिनमें रचनाकारों ने विभाजन की पृष्ठभूमि, साम्प्रदायिकता और उसके बाद व्यापक पैमाने पर दोनों ओर से आबादी के पलायन पर विस्तार से लिखा है. उन स्थितियों, व्यक्तियों और संगठनों पर भी टिप्पणियाँ की गयी हैं. भारत-विभाजन से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं में प्रमुख रूप से साम्प्रदायिकता, विस्थापन, हत्या और बलात्कार, लूट और आगजनी, संवेदनहीनता और मानवीय मूल्यों का विघटन तथा एक दूसरे के प्रति अविश्वास और घृणा आदि का हिंदी साहित्य में पर्याप्त चित्राण मिलता है. इस दृष्टि से यशपाल का 'झूठा सच', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', शानी का 'काला जल', भीष्म साहनी का 'तमस', भैरवप्रसाद गुप्त का 'सती मैया का चौरा', भगवतीचरण वर्मा का 'वह फिर नहीं आए', कमलेश्वर का 'लौटे हुए मुसाफिर' और 'कितने पाकिस्तान', बदीउज्ज़मां का 'वापसी', रामानंद सागर का 'और इंसान मर गया', बलवंतसिंह का 'काले कोस' औरमंज़ूर एहतेशाम का 'सूखाबरगद' आदिऐसी ही अनेक कृतियाँ हैं, जिनमें साम्प्रदायिकता की समस्या को उसके मूल कारणों के साथ सामने लाने का प्रयास रचनाकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है. भारत की आज़ादी, साम्प्रदायिकता और देश के विभाजन से सम्बद्ध स्थितियों पर केन्द्रित इन उपन्यासों की श्रंखला में भीष्म साहनी का 'तमस' एक महत्वपूर्ण रचना है. हिन्दी कथाकारों में भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है. उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में लिखा है. बहुत अच्छे अनुवाद भी किये हैं, लेकिन 'तमस' उनकी ऐसी रचना है जिसके कारण उन्हें सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली है. रचनाकार युगदृष्टा होता है. हरयुग का रचनाकार अपने जीवनानुभवों को अपनी लेखनी का विषय बनाता है. लेकिन

भारत की अनेक भाषाओं के रचनाकारों ने इस त्रासदी का विस्तृत वर्णन किया है. साहित्य की लगभग सभी विधाओं में देश के विभाजन और साम्प्रदायिकता का चित्रण मिलता है. यद्यपि हिंदी-भाषी क्षेत्र के लोगों ने विभाजन और विस्थापन की वैसी त्रासदी का सामना नहीं किया जैसा कि पंजाब और बंगाल की जनता को करना पड़ा.

Abhe